पंत और गुञ्जन

Hari Har Nivas Divedi

हरिहर निवास द्विवेदी,
एम० ए०, एल-एल० बी०

प्रकाशकः
गङ्गाबाई पंडित,
शिवाजी प्रकाशन-मन्दिर,
लखनऊ.

द्वितीय संस्करण
दिसम्बर १६४५
मूल्य १॥)

मुद्रक
पं० भृगुराज भार्गव
भार्गव-प्रिंटिंग-वर्क्स, लखनऊ.

माननीय श्री गोविन्दराव कृष्णराव शिन्दे

बार-एट-लॉ

को

सादर समर्पित

लेखक का निवेदन

(पहले संस्करण से)

जिस समय मैंने हिन्दी के वर्तमान कवियों के विस्तृत अध्ययन का विचार किया, उस समय मुझे कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त के गुंजन के अध्यापन का अवसर मिला। परिणामस्वरूप यह पुस्तक हिन्दी-संसार के सामने है।

आजकल अनेक समालोचना पुस्तकें लिखी जाती हैं, और महाकवि 'निराला' को छोड़कर वर्तमान प्रधान कवियों पर आलोचना पुस्तकें लिखी भी गई हैं, परन्तु मैंने इस पुस्तक में बँधे हुए ढर्रे से बाहर कदम रखा है। साहित्यकार पंत के पूर्ण तथा व्यापक अध्ययन के पश्चात् मैंने उनकी पुस्तक गुंजन का विस्तृत विवेचन किया है।

गुंजन के साथ पंत जी की रचनाओं के विकास का एक सर्ग समाप्त होता है। उस बीते हुए सर्ग के इस अन्तिम प्रयास में आगे की दिशा का भी आभास मिलता है। इस कारण इसे मैं कवि की विशिष्ट रचना मानता हूँ, और इसीलिए इस पुस्तक पर विस्तृत रूप से विचार प्रकट करने की प्रेरणा मुझे हुई है।

गुंजन के विवेचन के पश्चात् गुंजन के गानों की टीका दी गई है। ऐसा अब तक हिन्दी की साहित्यिक आलोचना-पुस्तकों में नहीं किया गया। अन्य कारण भी हो सकते हैं, परन्तु इसका प्रधान कारण वर्तमान कवियों की—विशेषतः छायावादी कवियों की अस्पष्ट शैली है। गुंजन के अनेक गानों की व्याख्याओं के विषय में मतभेद हो सकता है और उसे लेकर विज्ञ लोग चाहें तो मुझे अज्ञ तथा मूर्ख कह सकते हैं, परन्तु मुझे इसकी विशेष चिन्ता नहीं, क्योंकि एक तो मुझे विद्वान् होने का दावा कभी रहा नहीं, दूसरे मैं अपने को पूर्णतः सफल प्रयास समझूँगा यदि विद्वान् लोग मेरी व्याख्या पर विचार करके उसकी त्रुटियों को दिखाने का कष्ट करें। इस प्रकार, यदि कोई कमी इनमें होगी तो वह

दूर हो जायगा। मैं इस विषय में किये गये सुझावों का हृदय से स्वागत करूँगा।

प्रत्येक कविता की व्याख्या करते समय पहले पैराग्राफ़ में उस गान की व्यापक समीक्षा की गई है और फिर प्रत्येक छन्द की पृथक् पृथक् पैराग्राफ़ में व्याख्या की गई है। जहाँ किसी अन्य पुस्तक का उद्धरण दिया गया है, उस पुस्तक का नाम तथा पृष्ठ पाद-टिप्पणी में दे दिया है। गुंजन के उद्धरण देते समय ऐसा नहीं किया गया, पाठ के पश्चात् ही पृष्ठ-संख्या देदी गई है। यह पृष्ठ-संख्या गुंजन के तीसरे संस्करण की है।

गुंजन के कुछ गानों की ही—विशेषतः जो इण्टरमीडिएट के पाठ्य-क्रम में नियत हैं—व्याख्या दी गई है। यदि विद्वानों ने इस योजना को उपयोगी समझा तो अगले संस्करण में सम्पूर्ण गानों की व्याख्या दे दी जायगी।

यदि इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थियों का कुछ उपकार हो सका तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूँगा।

मकर—संक्रान्ति संवत् १९९९ वि०

दूसरे संस्करण में

मेरे इस प्रयास को विद्वानों ने अपनाया। मुझे इसकी प्रसन्नता होना स्वाभाविक है।

इस दूसरे संस्करण में मैंने कोई परिवर्तन नहीं किया है, इसे पुनर्मुद्रण ही समझा जाए।

विद्यामन्दिर,
मुरार (ग्वालियर)।
गणेश चतुर्थी,
सं० २००२ वि०

हरिहर निवास

विषय-सूची

श्री सुमित्रानन्दन पन्त

(व्यापक विवेचन)

कवि-परिचय

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक काल के इतिहासों की कमी नहीं है, परन्तु उन सबमें एक कमी है। उनमें वर्तमान साहित्यकारों की कृतियों की आलोचना, उनकी प्रवृत्तियों का प्रकाशन तो किया गया है, परन्तु उनके व्यक्तित्व को अछूता छोड़ दिया गया है, उनके जीवन-वृत्त के विषय में इतिहासकार प्रायः मौन रहते हैं। इसके अनेक कारण हैं। उन कारणों का विवेचन यहाँ इष्ट नहीं; यहाँ तो हम यही कहना चाहते हैं कि कविवर सुमित्रानंदन पंत भी इस उपेक्षा के अपवाद नहीं हैं। 'युगान्त' की भूमिका के अतिरिक्त व्यक्ति पंत के सम्बन्ध में जहाँ कहीं चर्चा है वह अधूरीसी और उनकी रचनाओं से सम्बद्ध भाग की है।

किसी कवि के जीवन-वृत्त के अध्ययन से उसकी रचनाओं की अनेक अन्तर्प्रवृत्तियों के विकास के उद्‌गम का पता तो लगता ही है; साथ ही

जिस कलाकार की प्रतिभा और साधना के प्रकाश से काव्य-जगत आलोकित हो उसके व्यक्तित्व की उपेक्षा भी प्रशंसनीय नहीं कही जा सकती। श्री सुमित्रानंदन पंत के विस्तृत जीवन के चित्रण करने का कर्तव्य उनके परिचित तथा समर्थ लेखकों के लिए छोड़, हम यहाँ प्राप्य सामग्री से उनका संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त देते हैं।

पंतजी की जीवन-कहानी घटना-बहुल नहीं है। उनका जन्म सन् १६०० ई० के मई मास में अलमोड़ा से बीस मील दूर कौसानी नामक ग्राम में हुआ था। पंतजी के पिता स्वर्गीय पंडित गंगादत्तजी कौसानी टी एस्टेट के एकाउण्टेण्ट थे तथा निजी तौर पर लकड़ी का व्यापार करते थे। इनकी माता का देहान्त इनके जन्म के छह घंटे पश्चात् ही हो गया था, अतः इनका पालन इनकी फूफी तथा पिता ने किया था। इनके पिताजी अत्यन्त स्नेहशील तथा उदार धार्मिक विचारों के व्यक्ति थे। पंडित गंगादत्तजी के चार पुत्र तथा चार पुत्रियाँ हुईं; कवि पंत उनमें सबसे छोटे हैं।

अलमोड़ा के पार्वत्य प्रदेश पर प्रकृति-देवी अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य-वैभव के साथ क्रीड़ा करती है। वहाँ के ऊँचे धवल गिरि—शिखर, सघन वन, सुन्दर निर्झर तथा संध्या और प्रभात के मनोरम दृश्यों के बीच कवि पंत ने अपना बाल्यकाल व्यतीत किया। वहाँ के 'पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश' ने सौन्दर्य-प्रिय कविबाल के भावुक तथा संवेदनशील हृदय पर वे चित्र अंकित कर दिये जो उनकी कविताओं में प्रतिबिम्बित होकर उनके पाठकों को मुग्ध करते रहते हैं।

पंतजी ने अपने ग्राम कौसानी की पाठशाला में विद्यारंभ किया। इसके उपरान्त वे अलमोड़ा के गवर्नमेण्ट हाईस्कूल में भरती हुए। हाई स्कूल परीक्षा जयनारायण हाईस्कूल बनारस से उत्तीर्ण करने के पश्चात वे प्रयाग के म्युअर कॉलेज में पढ़ने लगे। सन् १६२१ के सत्याग्रह

आन्दोलन में पंतजी, महात्मा गांधी के भाषण से बहुत अधिक प्रभावित हुए और उन्होंने कॉलेज, छोड़ दिया।

स्कूल और कॉलेज का वातावरण पंतजी को रुचिकर नहीं हुआ, विशेषकर स्कूल के अध्यापकों का आतंक तथा विद्यार्थियों की उच्छृंखलता इस भीरु, लज्जालु और एकान्त प्रिय विद्यार्थी को अरुचिकर ही रही, और पंतजी अच्छे विद्यार्थी भी नहीं रहे। छोटेपन से ही हिन्दी भाषा, काव्य और अभिनय की अभिरुचि ने इन्हें एक वर्ष हाई स्कूल परीक्षा में अनुत्तीर्ण, भी कर दिया। परन्तु सौभाग्य से इस अरुचि का यह शुभ परिणाम हुआ कि विद्यालयों की अन्धी मंजाई इस हीरे को द्युतिहीन न कर सकी तथा कवि अपनी प्रतिभा, मौलिकता तथा व्यक्तित्व को सुरक्षित लेकर लौट सका। पंतजी को बीज-गणित, रेखा-गणित आदि ने भले ही आकर्षित न किया हो; परन्तु उन्होंने हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, बंगला और अंग्रेजी के साहित्यों का अच्छा अध्ययन किया है। हिन्दी भाषा के पूर्ण अधिकार ने उन्हें उसका संस्कार करने की शक्ति प्रदान की और संस्कृत, अंग्रेजी तथा बंगला के कवियों से उनकी आरंभिक कृतियाँ बहुत प्रभावित हुई हैं। *

गांधीजी के भाषण से प्रभावित होकर पंतजी ने कॉलेज तो छोड़ा

---

* आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानंदन पंत, पृष्ठ ११ पर कवि लिखता है 'पल्लवकाल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों मुख्यतः शेली, वर्डस्वर्थ, कीट्स, और टैनीसन से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ...मैं कवीन्द्र (रवींद्र) की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ। मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का यत्रतत्र उपयोग भी किया है, और उसे अपने विकास का अंग बनाने की चेष्टा की है।

परन्तु राजनीति में प्रवेश नहीं किया। राजनीतिक संघर्ष क्या, कोई भी संघर्ष उनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है और वह उन्हें कभी आकर्षित नहीं कर सकता। प्रगतिवादी संघ के सभापति के रूप में भी कवि पंत का हृदय अपनी वही कोमलता, प्रकृतिप्रेम और मनोरमता को लिये हुए है; उसने अपने विषय-मात्र बदल दिए हैं उपादान वही पुराने मौजूद हैं। उपादान के ठीक अनुरूप विषय न होने के कारण अप्राकृतिकता की गंध अवश्य कहीं कहीं आ गयी है। अस्तु।

सन् १९२८ ई० में कवि के पिताजी का देहान्त हुआ और साथ ही अनेक पारिवारिक तथा मानसिक व्यथाओं ने इन्हें घेर लिया। पंत जी अस्वस्थ होगये और कुछ दिनों मृत्यु और जीवन के बीच रहकर उपचार के पश्चात् अच्छे हो गये। इस घटना का कवि पर बहुत प्रभाव पड़ा। इन्होंने मानव-जीवन पर तात्विक चिन्तन किया। प्रकृति का कवि मानव की ओर आकर्षित हुआ। इसी परिवर्तन काल में 'गुंजन' में संगृहीत अनेक कविताओं की रचना हुई।

पंतजी के जीवन-वृत्त के साथ कालाकाँकर के उदारमना कुंवर सुरेशसिंह का नाम सम्बद्ध है। सन् १९३१ से १९३४ तक पंतजी आपके साथ ही कालाकाँकर में रहे। हिन्दी के एक महान् कवि को सम्पूर्ण सुविधायें देकर कुंवर साहब ने हिन्दी को उपकृत किया, साथ ही कवि के संयोग से कुंवर साहब तथा कालाकाँकर का नाम भी अमर हुआ। जब तक पंतजी की रचनाओं के प्रेमी रहेंगे तब तक उनकी कविता 'नौका-विहार' अपने विशिष्ट स्थान के साथ स्मरण रखी जायगी। और उसके साथ 'कालाकाँकर का राजभवन' भी हिन्दी संसार की स्मृति में अपना अस्तित्व बनाये रहेगा।

अभी पंतजी लम्बी और गंभीर बीमारी से उठे हैं। उनकी बीमारी से सारा हिन्दी संसार व्यग्र हो गया था।

पंतजी ने कविता लिखना उस समय से प्रारंभ कर दिया था जब वे आठवीं कक्षा में पढ़ते थे। पंतजी की रचनाओं के विषय में आगे लिखेंगे, यहाँ तो हम यही लिखना चाहते हैं कि इस कवि की रचनाओं के पठन से तो लोकोत्तर आनन्द प्राप्त होता ही है, परन्तु इनके मोहक व्यक्तित्व से प्रसूत मधुर स्वर में गुंजरित इनकी कविता स्वर्गीय कला-पूर्ण वातावरण का सृजन कर देती है और मंत्रमुग्ध श्रोता को मधुर आघातसा लगता है जब कवि अपना कविता-पाठ समाप्त करके अपना हाथ उठाकर कहता है 'बस'।

कृतियाँ

प्रस्तुत पुस्तक में यद्यपि हमने पंतजी की केवल एक कृति—गुंजन—के अध्ययन का संकल्प किया है, तथापि किसी साहित्यकार की एक रचना को भी पूरी तरह समझने में उसकी अन्य सब कृतियों से परिचय पा लेना भी सहायता करता है। पंतजी जैसे सजग और उन्नतिशील कलाकार की प्रतिभा और विकास को समझने के लिये उनकी सब कृतियों का परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से पंतजी की कृतियों का रचना-काल के अनुसार संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जाता है।

आरंभिक

जैसा पहले लिखा जा चुका है, पंतजी उस समय से रचना करने लगे थे जब वे आठवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। उस समय उन्होंने अनेक कविताएँ तथा 'हार' नामक एक उपन्यास लिखा। उन कविताओं में वे हरिगीतिका तथा रोला आदि छन्दों का प्रयोग करते थे, परन्तु विषयों

के चुनाव में उस छोटी आयु में ही अपनी मौलिकता प्रदर्शित करने लगे थे। वे 'तम्बाखू का धुआँ' 'कागज का कुसुम' आदि शीर्षक कवितायें लिखते थे। उस समय की रचनाएँ पंतजी ने नष्ट कर डाली हैं। कदाचित् समकालीन पत्रों में कुछ मिल सकती हैं। 'हार' उपन्यास की पाण्डुलिपि नागरी प्रचारिणी सभा काशी में सुरक्षित है।

वीणा

पतजी की कविताओं का पहला संग्रह 'वीणा' नाम से प्रकाशित हुआ है। जिस समय वे बनारस में अध्ययन कर रहे थे उस समय उन्होंने बंगला के महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'चयनिका' तथा 'गीतांजलि' को पढ़ा। उसी समय पंतजी ने उन कविताओं की रचना प्रारम्भ की जिनका संग्रह 'वीणा' में है। अतः वे कवितायें रवि बाबू की कविताओं से अधिक प्रभावित हुई हैं। इस संग्रह में कवि के ही शब्दों में 'दो एक को छोड़ अधिकांश सब रचनायें १९१८-१९ की लिखी हुई हैं', कवि ने इसे अपना 'दुधमुहा' प्रयास कहा है। परन्तु इसमें कवि की महानता के सब चिह्न बीजरूप से मौजूद हैं। सौन्दर्य-सृष्टि, प्रकृतिप्रेम, और उसका उत्फुल्ल वर्णन, प्रस्तुत रूप के वर्णन के लिये अप्रस्तुत रूपों की योजना, मूर्तिमत्ता तथा लाक्षणिकता इस संग्रह की कविताओं में भी मिलती है। कवि ने अपनी नम्रता दिखाते हुए इन रचनाओं को 'बिना व्याकरण बिना विचार' तथा 'ताल-लय-रहित' बतलाया है। परन्तु जिस संग्रह में 'प्रथम किरण का आना रंगिनि' जैसी सुंदर रचनाएँ भी हों वह इससे कुछ अधिक ही कहा जायगा। यद्यपि इसमें भाषा सम्बन्धी अनेक दोष भी हैं; परन्तु कवि ने इसमें भाषा-मार्जन का प्रयत्न भी आरम्भ कर दिया था जिससे खड़ी बोली शक्ति और शालीनता प्राप्त करने के मार्ग पर चल पड़ी।

ग्रन्थि

सन् १९२० में जब कवि कॉलेज से गर्मियों की छुट्टी में घर गया तो वहाँ 'ग्रन्थि' की रचना हुई।

'ग्रन्थि' पंतजी की 'प्रेम' पर पहली विस्तृत रचना है। यह गीति-कथा एक छोटे से कथानक के आधार पर है। नायक की नौका नदी में डूब जाती है। जब वह होश में आता है तो देखता है कि एक सुकोमल बालिका उसके सिर को अपनी जंघा पर रखे उसकी ओर लालसा-पूर्ण दृष्टि से देख रही है। नायक उसके प्रेम-पाश में बंध जाता है। संयोग और वियोग के अनेक अवसरों के पश्चात् नायक को ज्ञात होता है कि समाज उसके प्रेम-सम्बन्ध को स्वीकार नहीं करता। उस बालिका का ग्रन्थि-बन्धन नायक के देखते-देखते अन्य व्यक्ति से कर दिया जाता है। यहीं इस रचना की समाप्ति होती है। ज्ञात होता है कि कवि ने इसी करुण और विफल प्रेम के उच्छ्वास तथा आँसुओं को १९२१ ई० में 'उच्छ्वास' और 'आँसू' शीर्षक कविताओं में अभिव्यक्त किया है जो 'पल्लव' में संग्रहीत हैं। 'ग्रन्थि' की रचना में कवि संस्कृत काव्य से प्रभावित ज्ञात होता है। इसमें किये गये तत्सम शब्दों तथा अलंकारों के अधिक प्रयोग इस बात के ही चिह्न हैं। परन्तु इसमें मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय, ध्वनिचित्रण, आदि पाश्चात्य अलंकारों का भी प्रयोग है।

पल्लव

'पल्लव' पंतजी का सबसे पहले प्रकाशित होनेवाला कविता-संग्रह है। यह सर्वप्रथम १९२६ में बड़े ठाटबाट से प्रकाशित हुआ था। यद्यपि 'वीणा' की कविताएँ तथा 'ग्रन्थि' इसके पूर्व ही लिखी जा चुकी थीं परन्तु वे प्रकाशित 'पल्लव' के पश्चात् हुईं। 'पल्लव' में पंतजी ने १९१८

तथा १६१६ की कुछ विशिष्ट रचनाएँ, (जो फिर 'वीणा' में नहीं सम्मिलित की गईं) तथा पीछे की १६२५ तक की चुनी हुई कविताएँ संग्रहीत की हैं। इस प्रकार कवि के १६२५ तक के विकास का यह श्रेष्ठतम उदाहरण है। इसके पश्चात् कवि में दिशा-परिवर्तन के चिह्न हमें दृष्टिगोचर होते हैं, अतः पंत-साहित्य में 'पल्लव' उनके एक दिशा के प्रयास की सफलता का प्रतिनिधि है। 'पल्लव' में सौन्दर्य-सृष्टा, प्रकृति-प्रेमी, कोमल शब्दावलि-पूर्ण, काव्य-कला के अधिपति पत के दर्शन जिस पूर्णता से हुए वह 'गुंजन' की कविताओं को छोड़कर फिर आगे न हो सके। 'गुंजन' में कवि में दार्शनिक जागा और आगे राजनीतिक और सामाजिक प्रचारक। जिस प्रवृत्ति को हिन्दी में छायावाद कहा गया उसका पंतजी ने प्रसादजी के पश्चात् नेतृत्व किया है और 'पल्लव' उसी नेतृत्व का चिह्न है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य में 'पल्लव' का विशिष्ट स्थान है।

'पल्लव' में पंतजी की ३२ कविताओं का संग्रह है और आरम्भ में ५४ पृष्ठ का बहुत ही ओजमय तथा आवेशपूर्ण गद्य में लिखा गया 'प्रवेश' दिया गया है। 'प्रवेश' में कवि ने पुरानी काव्य पद्धति के विरुद्ध अपने विरोध का प्रदर्शन किया है। रीतिकाल की अतिशय पार्थिव शृंगार-भावना तथा द्विवेदीजी के समय की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रसादजी ने नवीन पथ का अनुसरण करके नवीन काव्यप्रणाली-छायावाद–के भावपक्ष को पुष्ट किया, उसी के कलापक्ष का बहुत ही कोमल और परिमार्जित विकास पंतजी ने 'पल्लव' में किया। इस संग्रह की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता का हिन्दी-साहित्य में विशेष स्थान है। हमारे वर्तमान महाकवि श्री 'निराला' ने इसके विषय में लिखा है "मेरे विचार से 'परिवर्तन' किसी भी बड़े कवि की कृति से निस्संकोच मैत्री कर सकता है।"*

---

* प्रबन्ध-पद्म—पृष्ठ १३३

गुंजन

गुंजन में पंतजी की १९१९ से १९३२ तक की रचनाओं का संग्रह है। इसकी कुछ रचनाएँ पल्लव की शैली की हैं, परन्तु गुंजन में कवि ने दिशा-परिवर्तन भी किया है। अपने कोमल और मधुर भावों के साथ सौन्दर्यान्वेषण में लीन कवि अब 'आत्मा के चिर धन' की खोज में निकल पड़ा है। वह दार्शनिकता की ओर बढ़ा है। कवि ने मानव तथा संसार के प्रति अधिक आत्मीयता का अनुभव किया। गुंजन के विषय में आगे विस्तार से विचार करना है अतः यहाँ अधिक लिखना आवश्यक नहीं है।

युगान्त

गुंजन की कविताओं में मानव-प्रेम की भावना का स्रोत तथा काल्पनिक सौन्दर्य-संचय से विरक्ति का जो आभास मिला था, 'युगान्त' में वह पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ। 'युगान्त' में कवि ने सांसारिक तथ्यों से प्रभावित होकर उनकी अभिव्यक्ति प्रारंभ की है। कवि के शब्दों में 'युगान्त' में पल्लव की कोमल-कान्ति का अभाव है। इसमें मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है मुझे विश्वास है भविष्य में मैं उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।' वास्तव में 'युगान्त' कवि के उस परिवर्तनकाल की रचना है जब उसने 'पल्लव' की प्रवृत्तियों को त्यागने का संकल्प कर 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की प्रचारात्मक तथा प्रगतिवाद के घेरे में आनेवाली रचनाओं का प्रारंभ किया था। यही कारण है कि उनमें जीवन तथा लोक-कल्याण की भावना के साथ साथ पंतजी की कोमलकला का भी सामंजस्य हुआ है। इन कविताओं में चिन्तन तथा दार्शनिक गंभीरता भी है। कवि का प्रकृति-प्रेम भी इस संग्रह की रचनाओं में प्रदर्शित हुआ है।

'युगान्त' में ३३ कविताएँ हैं जो प्रायः सन् १९३४, १९३५ तथा १९३६ की लिखी हुई हैं। युगान्त की एक विशेषता यह है कि उसके साथ श्री दीनानाथ पंत द्वारा लिखा हुआ कवि का परिचय —चित्र-रेखा- है। इस निबंध में कवि के जीवन के विषय में अधिक से अधिक प्रामाणिक तथ्य बतलाये गये हैं।

युगवाणी

'युगान्त' के पश्चात् १९३९ तक की रचनाएँ 'युगवाणी' में संग्रहीत हैं। इसमें ८२ कविताएँ हैं जिनमें कवि के शब्दों में 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया गया है' तथा 'युग की मनोवृत्ति का' आभास देने का भी प्रयत्न है। वर्तमान राजनीति में आज जितने 'वाद' और 'वर्ग' सुनाई देते हैं उन सबका इसमें समावेश है। इसमें मार्क्स तथा गांधी, मार्क्सवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद, गांधीवाद तथा भौतिकता-वाद पर विचार प्रकट किये गये हैं और धनिक, मध्यम, कृषक तथा श्रमजीवी आदि वर्गों को भी सम्बोधित किया गया है। नारी-जगत् के उत्थान के आन्दोलन की विचारधारा को भी कवि ने व्यक्त किया है। 'निराला' और द्विवेदीजी जैसे साहित्यकारों के प्रति भी श्रद्धा प्रकट की है और साथ ही प्राकृतिक पदार्थों —ओसविन्दु, जलद, नीम आदि पर भी कविताएँ लिखी हैं।

कविता किसी विचारधारा के प्रचार करने का साधन नहीं है। यही कारण है कि अनेक विद्वान् यह शंका करते हैं कि 'युगवाणी' को 'काव्य' भी माना जाय या नहीं? कवि स्वयं इसका उत्तर देता है। वह इसे 'गीत-गद्य' कहता है। इसमें उसने 'युग की मनोवृत्ति' को काव्य की प्रणाली में नहीं, गद्य की प्रणाली में व्यक्त करने का प्रयत्न किया है। कवि, कवि के रूप में न आकर विचारक के रूप में आया है। इन

वादों' और 'वर्गों' की समस्याओं को तथ्य रूप में प्रकट करना गद्य की प्रणाली है, उसे एक विशिष्ट समय के, विशेष 'वाद' के अनुयायी ही पसन्द कर सकेंगे। न समस्याओं में से भी उन चिरन्तन भावनाओं को काव्य का विषय बनाया जा सकता है जो युग की वाणी न बनकर युग-युग की वाणी बन सकें। 'युग-वाणी' में यह नहीं हो सका।

ग्राम्या

'ग्राम्या' पंतजी की अब तक की प्रकाशित अन्तिम रचना है। इसमें युगवाणी के पश्चात् १९४० के मध्य तक की ५३ कविताओं का संग्रह है। 'युगवाणी' में कवि ने युग की समस्याओं पर विचार करके अपने सिद्धान्तों को प्रकट किया, 'ग्राम्या' में वे भारत की 'युग-समस्या' ग्रामों के अधिक निकट आये हैं। कवि ने तटस्थता से ग्रामों का जो अध्ययन किया है उसका परिणाम ग्राम्या है। भाषा, कल्पना और सौन्दर्य-प्रेम के वैभव से सम्पन्न एक महान् कलाकार ने ग्रामों पर सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि डालकर मानों अनुग्रह किया है। 'ग्राम्या' की कविताओं को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वे ग्राम्य-जीवन में अपने आपको मिला देनेवाले कवि की वाणी नहीं हैं। कवि ने स्वयं 'निवेदन' में लिखा है 'इनमें पाठकों को ग्रामीणों के प्रति केवल बौद्धिक सहानुभूति ही मिल सकती है। ग्राम्य-जीवन में मिलकर, उसके भीतर से, ये अवश्य नहीं लिखी गई हैं।'

परन्तु 'ग्राम्या' कोरा गद्य-गीत न होकर 'काव्य' भी है। इसमें कवि, कवि के रूप में प्रकट हुआ है। सौन्दर्य-द्रष्टा पंत ने ग्राम में भी जो सुन्दर था उसके प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। साथ ही भाषा और भाव-प्रकाशन शैली में भी सरलता की ओर परिवर्तन दृष्टि-गोचर होता है। नक्षत्र-लोक में, परियों के देश में विहार करनेवाली कवि-कल्पना

अब ग्रामों के आँगन में उतरती है तो अपने साथ हास्य और व्यंग्य भी लेती आई है।

पंतजी सच्चे कवि हैं। उनकी प्रतिभा जिस नवीन मार्ग पर चल पड़ी है उसकी उनकी सबसे बड़ी देन अभी साहित्य-संसार को नहीं मिली है—'युगवाणी' और 'ग्राम्या' प्रयोगमात्र हैं। एक दूसरे से अधिक सफल है, यही कहा जा सकता है, कवि का 'महान्' अभी आने को है।

नाटककार पंत

प्रसादजी की 'कामना' के समान पंतजी ने भी एक नाट्य-रूपक 'ज्योत्स्ना' सन् १९३३ ई० में लिखा है। नाटक की दृष्टि से हम इसे सफल नहीं कह सकते; इसमें न तो वस्तु है, न कार्य, और न चरित्रों का विकास। परन्तु फिर भी 'ज्योत्स्ना' का हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। कवि ने देखा कि संसार में एक ओर धर्मान्धता, अन्ध-विश्वास और जीर्ण रूढ़ियों से संग्राम चल रहा है, दूसरी ओर वैभव और शक्ति का मोह मनुष्य की छाती को लौह-शृंखला की भाँति जकड़े है। बुद्धि का अहंकार, प्रखर त्रिशूल की तरह बढ़कर मनुष्य के देवत्व-प्रिय स्वभाव, एवं आदर्श-प्रिय हृदय को स्वार्थ की नोक से छेद रहा है। 'ज्योत्स्ना' के रूपक में कवि ने उन उपायों को अभिव्यक्त किया है जो उसने इन विषमताओं को मिटाने के लिये सोचे हैं। इसमें कवि के मानव-वाद और समाज-वाद के सामंजस्य से कल्पित स्वर्ग का निरूपण है।

यह पाँच अंकों का नाटक है। संसार की विषमता से घबराकर संसार का शासक 'इंदु' अपने शासन की बागडोर 'ज्योत्स्ना' को दे देता है। ज्योत्स्ना लोक-कल्याण के लिये पृथ्वी पर उतरती है और पवन तथा सुरभि की सहायता से संसार में स्वर्ग की स्थापना करती है।

नाट्य-शास्त्र की कसौटी पर पूरी न उतरने पर भी 'ज्योत्स्ना' कला-पूर्ण कृति है। पंतजी की कोमल भावना तथा चित्रांकण की सामर्थ्य इसमें अपने चरम विकसित रूप में विद्यमान है। प्रकृति के मानवेतर पदार्थों को मानव-रूप देकर पंतजी ने उनके सच्चे और सजीव चित्र उपस्थित किये हैं।

कहानी-लेखक पंत

सन् १९३६ में पंतजी की 'पाँच कहानियाँ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इन कहानियों में हमें कवि पंत के ही अधिक दर्शन हुए हैं, कहानीकार के नहीं। भाषा पर पूर्ण अधिकार, दृश्यों का सुन्दर तथा सजीव चित्रण, सूक्ष्म निरीक्षण, प्रवाह और सौन्दर्य-प्रेम इनमें पंतजी की कविताओं के समान ही हैं, परन्तु कथानक नहीं के बराबर है। जिस अर्थ में और जिस सीमा तक 'उच्छ्वास' और 'ग्रंथि' को कहानी कहा जा सकता है उसी अर्थ में और उसी सीमा तक ये पाँच कहानियाँ भी 'कहानियाँ' कही जा सकती हैं। कथानक अत्यन्त सूक्ष्म है तथा कथोपकथन का अभाव है, कहानी के अन्य उपकरण भी इसमें ढूँढना उपयोगी नहीं है। कविता की तरह इसका प्रत्येक पैराग्राफ मधुर-शब्दावलि, सुन्दर विचारधारा, मनोरंजक चित्र तथा हृदयस्पर्शी कल्पनाओं से भरा हुआ है। इनकी विशेषताओं के कारण इन 'पाँच कहानियों' का हिन्दी संसार में विशेष स्थान रहेगा।

गद्यलेखक पंत

पंतजी ने बहुत ही अलंकारिक, ओजपूर्ण, व्यंग्यात्मक तथा सशक्त गद्य का उदाहरण 'पल्लव' के 'प्रवेश' में प्रस्तुत किया है। उसमें उनकी

विवेचना शक्ति, हास्य और व्यंग्य पूर्ण रूप से प्रकट हुए हैं। इसमें कवि ने तर्कों का अधिक सहारा न लेकर भावुकता तथा व्यंग्य का अधिक सहारा लिया है, जिसमें लेखक पाठक को अपने विचार का कायल भले ही न करे परन्तु चमत्कृत अवश्य कर देता है।

पंतजी ने हिन्दी-साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'आधुनिक कवि' नामक ग्रन्थमाला के प्रारंभ में अपनी रचनाओं का पर्यालोचन करते समय अधिक गंभीर विवेचनात्मक गद्य प्रस्तुत किया है।

शारदा के इस वरद पुत्र ने जिस ओर कलम उठाई है अपना विशेष स्थान बना लिया है।



छायावाद और पंत

श्रेष्ठ कविता वही है जो किसी एक काल विशेष में ही सुन्दर न लगकर युग-युग तक सुन्दर ज्ञात हो। किसी विशेष समय की संकुचित और सीमित विचारधारा और रुचि से ऊपर उठकर जो रचना की जायगी वही मानव-हृदय को सदा अनुरक्त करती रहेगी। परन्तु राजनीति के समान काव्य-संसार में भी 'वादों' का प्रचार करने की प्रथा अब चल निकली है। इन 'वादों' के फेर में पड़कर अनेक कवि अपनी प्रतिभा के विकास के सहज मार्ग से हटकर अस्वाभाविक अनुभूतियों से पूर्ण कविताओं का सृजन करने लगते हैं। 'वाद' की सकड़ी गली में अवरुद्ध होकर कविता का गला घुटने लगता है, उसकी उत्फुल्लता नष्ट हो जाती है और फिर अनेक ऐसी रचनाएँ होने लगती हैं जो कालचक्र के धक्कों को सहन करने में असमर्थ होती हैं।

प्रसाद, निराला, पंत तथा महादेवी वर्मा और उनके अनुकरण

तथा अनुसरण पर कविताएँ लिखनेवाले कवियों को छायावादी कवि कहा जाता है। परन्तु किसी भाषा की किसी विशेष काल की कविता-धारा इतनी संकुचित नहीं हो सकती कि उसे एक नाली में नापा जा सके। इसके पूर्व हिन्दी में किसी काल की कविताओं को किसी 'वाद' का नाम देकर उस वाद के रूप तथा परिभाषा पर विवाद करने की परिपाटी नहीं थी। परन्तु जब यह विवाद चल ही पड़ा है तो उसको समझकर सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है।

पीछे हम लिख आये हैं कि पंतजी का छायावादी कवियों में श्रेष्ठ स्थान है। अतः पंत के विद्यार्थी को यह आवश्यक है कि वह यह समझे कि 'छायावाद' क्या है?

जिस समय में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' के संपादक रहे, उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक द्विवेदी-काल कहते हैं। उस समय की कविताएँ अधिकतर इतिवृत्तात्मक हुआ करती थीं। द्विवेदीजी के समय में खड़ीबोली को कविता की भाषा होने का सौभाग्य तो मिला, परन्तु उसकी शक्ति का अधिक विकास न हो सका, संस्कृत के नवीन छन्दों का उपयोग प्रारंभ तो हुआ परन्तु छन्दों के विषय में किसी प्रकार की नवीन उद्भावना न की गई। द्विवेदीकाल की कविताएँ मानों पाठशालाओं के विद्यार्थियों को सच्चरित्रता तथा आत्मनिर्भरता आदि सद्गुणों का पाठ पढ़ाने को लिखी जाती थीं जिनमें सूक्ष्म-कल्पना, भावुकता, सौन्दर्य-सृष्टि आदि को स्थान न मिलकर व्याकरण और पिंगल को प्रमुख स्थान मिलता था।

इन प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया स्वरूप हिन्दी में उन रचनाओं का प्रारंभ हुआ जिन्हें छायावाद का नाम दिया जाने लगा। इनका प्रारंभ स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसादजी ने किया और इनका पूर्ण पोषण श्री निराला, पंत तथा महादेवी वर्मा कर रहे हैं।

इसके पूर्व कि छायावाद की परिभाषा की जाए, यह उपयोगी होगा कि इस बात को भी देखने का प्रयत्न किया जाए कि हिन्दी के इन नवीन प्रणाली के सृष्टाओं की रचनाओं को छायावाद संज्ञा दी कैसे गई ?

इस प्रश्न पर विचार करते समय एक बात स्मरण रखना चाहिये। प्रसाद, पंत, निराला सभी बंगला साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं, इनमें से विशेषतः पंतजी की प्रारंभिक रचनाओं--वीणा, पल्लव तथा गुंजन पर तो बंगला साहित्य का, विशेषकर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओं का अधिक प्रभाव है। निरालाजी का तो 'बंगला वैसी ही मातृभाषा है जैसी हिन्दी'।* बंगला के ब्रह्मसमाज के अनुयायियों की प्राचीन संतों की रहस्यात्मक वाणी के अनुकरण में की गई रचनाओं को 'छायावाद' कहते थे। अतः जब रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' से प्रभावित होकर हिन्दी में भी नवीन गीतों में, नवीन कल्पनाओं से परिव्याप्त द्विवेदी-युग के बँधे ढर्रे के बाहर रचनायें होने लगीं तो सम्भवतः इनका मजाक उड़ाने के लिये पुराने प्रवाह के पक्षपाती आलोचकों ने इनको भी वास्तविक आधार-हीन अथवा जिनमें ठोसपन की कमी हो—केवल छायामात्र-'छायावाद'—कहना प्रारम्भ कर दिया। परन्तु यह संज्ञा फिर नवीन काव्य-प्रणाली को व्यंजित करने के अर्थ में इसके पक्षपातियों द्वारा भी गृहीत हुई। वर्तमानकाल की प्रधान कवयित्री महादेवी वर्मा ने इस शब्द के विषय में अपने कविता-संग्रह 'रश्मि' की भूमिका में लिखा है:—'उसके (छायावाद के) जन्म से प्रथम कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिये रो उठा। स्वच्छन्द छन्द में चित्रित

---

* प्रबन्ध–प्रतिमा—पृष्ठ ३८।

उन मानव अनुभूतियों का नाम 'छाया' उपयुक्त ही था और मुझे आज भी उपयुक्त ही लगता है।'* पंतजी ने पल्लव की भूमिका में 'काव्य के बाह्य रूप पर ही लिखकर सन्तोष किया है।'† और 'काव्य कला के आभ्यांतरिक रूप' पर न लिखकर उन्होंने हिन्दी संसार को 'छायावाद' पर अपने विचारों से वंचित किया है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की 'आधुनिक कवि' ग्रन्थमाला के 'पर्यालोचन' में उसकी आशा थी; परन्तु इस समय कवि पंत एक 'वाद' विशेष के अभिभावक बन गये हैं। दुर्भाग्य से वह 'वाद' अपने आपको 'छायावाद' का प्रतिस्पर्धी मानता है। अतः उन्होंने छायावाद के पतन को स्वयं-सिद्ध मानकर उसके पतन के कारण भर लिख दिये हैं। वे लिखते हैं 'छायावाद इसलिये अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिये उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन-भावना का सौन्दर्य-बोध, और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न बनकर अलंकृत संगीत बन गया था। द्विवेदी-युग के काव्य की तुलना में छायावाद इसलिये आधुनिक था कि इसके सौन्दर्य-बोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था और उसका भाव-शरीर द्विवेदी-युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक् हो गया था। किन्तु वह नए युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था।'‡ परन्तु काव्य में किसी एक प्रकार की रचना का अन्त कभी नहीं होता। आज इतनी शताब्दियों के पश्चात् बिहारी की सतसई के समान 'गागर में सागर' भरने के प्रयत्न किये ही जाते हैं। इस विवाद में हम अधिक न पड़ 'छायावाद' की परिभाषा की ओर आते हैं।

---

* रश्मि—अपनी बात—पृष्ठ ४।

† पल्लव—विज्ञापन (प्रथम संस्करण)।

‡ आधुनिक कवि—श्रीसुमित्रानन्दन पंत—पर्यालोचन—पृष्ठ १०।

'छायावाद' की परिभाषा करने में बड़े-बड़े विद्वानों और छायावादी कहलानेवाले कवियों ने भी बहुत अद्भुत उक्तियाँ प्रस्तुत की हैं। प्रसिद्ध कवि 'प्रेमी' एक स्थान पर लिखते हैं 'छायावाद एक स्थिति है जिसमें हृदय को अनन्त के साथ अपने सम्बन्ध की अनुभूति होती है। छाया-वाद प्रेमी, प्रेम, अनन्त और सौन्दर्य इन चारों चीजों में सम्बन्ध स्थापित करता है।' * कवि ने छायावाद की परिभाषा करने में भी कविता कर डाली। 'छायावाद' हृदय की एक स्थिति नहीं, हिन्दी साहित्य की रचना-धारा की एक नवीन और प्रधान प्रणाली का नाम है।

छायावाद को कुछ दिनों रहस्यवाद का भी समानार्थी बतलाया गया और इससे भी अनेक भ्रम फैले। संवत् १९८६ में 'छायावादी' कवियों के ऊपर अपना सशक्त प्रहार करने की चेष्टा करते हुए हिन्दी के महान् आलोचक स्वर्गीय रामचन्द्र शुक्ल ने 'काव्य में रहस्यवाद' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा ' यह निबन्ध केवल इस उद्देश्य से लिखा गया है कि 'रहस्यवाद' या 'छायावाद' की कविता के सम्बन्ध में भ्रांतिवश या जानबूझ कर जो अनेक प्रकार की बेसिर-पैर की बातों का प्रचार किया जाता है, वह बन्द हो।'' आचार्य को यहीं भ्रांति हुई। यदि वे छायावाद को रहस्यवाद का समानार्थी शब्द न मानकर उसका स्वतंत्र अस्तित्व मानते तो उन्हें उस पुस्तक की बहुत-सी कटु बातें न लिखनी पड़तीं। परन्तु उस समय यह सम्भव नहीं था। संवत् १९९७ में उन्हें वर्तमान कवियों से कुछ सहानुभूति हुई। यद्यपि वे अपने प्राचीन मत से पूरी तरह न हट सके फिर भी वे 'छायावाद' को वर्तमान कविता-प्रणाली का नाम मानने लगे। पुराने संस्कार के कारण उन्होंने लिखा 'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये, एक तो रहस्य-

---

* 'कलरव' की भूमिका।

वाद के अर्थ में ....'।❀

बात यह है कि छायावाद को रहस्यवाद का समानार्थी मानना ही सब गड़बड़ी का मूल है। हिन्दी कविता-धारा ने द्विवेदी-युग के प्रवाह से जहाँ एक मोड़ लिया वहाँ से लेकर जब तक उसने 'प्रगतिवाद' के रूप में एक और मोड़ नहीं ले लिया तब तक के उसके प्रधान प्रवाह का 'छाया-वाद' नाम रखा गया है। यह सत्य है कि उस काल की अनेक रचनाओं में रहस्यात्मक प्रवृत्ति भी प्रमुख रूप से दिखाई देती है परन्तु वह छायावादी रचनाओं की उसी प्रकार की एक प्रवृत्ति है जिस प्रकार की आगे निर्देशित अन्य प्रवृत्तियाँ हैं। इसी विचार को श्रीमहादेवीजी ने कुछ विरक्त भाव से इस प्रकार व्यक्त किया है 'छायावाद के अन्तर्गत न जाने कितने वाद हैं। मेरी रचना का कहाँ स्थान है मैं यह नहीं जानती। जहाँ जिसका जी चाहे रखे।' † महादेवी की रहस्यभावना प्रधान कविताएँ इसी व्यापक अर्थ के कारण छायावाद के अन्तर्गत आती हैं।

इस विवेचन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि बंगला भाषा में मूल रूप में उसका अर्थ कुछ भी रहा हो, हिन्दी के प्राचीन तथा नवीन काव्य-प्रेमी आलोचकों ने समय समय पर कुछ भी अर्थ लिया हो, वर्तमान हिन्दी कविता में छायावाद से तात्पर्य उस कविता धारा से है जो द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध विद्रोह स्वरूप नवीन छन्दों में प्रतीक-पद्धति तथा चित्रभाषा की शैली में प्रवाहित की गई तथा जिसमें यथार्थता की ओर से पलायन, प्रकृति के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण, मानव-प्रेम, आत्माभिव्यंजन, नीति-विद्रोह, दुःखवाद तथा रहस्यवाद की ओर विशेष प्रवृत्ति दिखलाई गई।

❀ हिन्दी-साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ८०६ (नवीन संस्करण)।

† रश्मि—अपनी बात—पृष्ठ ६।

इस छायावाद का प्रतिनिधित्व पंत ने 'पल्लव' तथा 'गुंजन' की कविताओं में किया है। छायावाद की शैली तथा प्रवृत्तियों का पूर्ण विकसित रूप हमें उनकी रचनाओं में मिलता है। हमारा सम्बन्ध केवल 'गुंजन' से है। आगे गुंजन के अध्ययन में हम इन बातों पर विस्तृत प्रकाश डालेंगे।

रहस्यवाद और पंत

'छायावाद' के विषय में लिखते समय यह बतलाया गया है कि किस प्रकार हिन्दी के विद्वान् 'छायावाद' को 'रहस्यवाद' का समान अर्थी बतलाते रहे। अब हम संक्षेप में यह देखेंगे कि रहस्यवाद क्या है ? और किस सीमा तक तथा किस रूप में वह छायावादी कविता का अंग बना है ?

रहस्यवाद की परिभाषा भी हिन्दी के अनेक विद्वानों ने अनेक रूप से की है। डॉ॰ रामकुमार वर्मा उसे बहुत संक्षिप्त रूप देते हुए लिखते हैं "रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता।"* वर्मा जी की यह परिभाषा यद्यपि सुन्दर

* कबीर का रहस्यवाद—पृष्ठ ६।

है, परन्तु उसमें एक कमी है। 'प्रवृत्ति का प्रकाशन' दो प्रकार से हो सकता है। एक तो तार्किक तथा विवेचनात्मक शैली में, उस समय उस 'प्रकाशन' को दर्शन' कहा जाएगा, रहस्यवाद नहीं। दूसरे, यह प्रकाशन भावना प्रधान, कविता की शैली में हो सकता है, उसी समय वह 'प्रकाशन' रहस्यवाद कहा जा सकेगा। अतः उक्त परिभाषा में 'प्रकाशन' शब्द के पूर्व 'कविता की प्रणालीद्वारा' अथवा 'भावना-पूर्ण' शब्द जोड़ने से वह सर्वांगपूर्ण बन सकती है। इसी को अत्यन्त संक्षिप्त परन्तु सुन्दर तथा पूर्ण रूप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है "जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है।"*

इस विश्व का निर्माता कौन है ? मनुष्य की उस निर्माता तथा इस संसार के सम्बन्ध में क्या स्थिति है ? ये प्रश्न संसार के विभिन्न भागों के विचारकों के मस्तिष्क में उठते रहते हैं। इनके चिन्तन ने दर्शन-शास्त्र की सृष्टि की है। मानव-आत्मा का विश्व-नियन्ता से तादात्म्य प्राप्त करना संसार के अनेक दर्शनों ने उसके उद्धार का चरम तथा एक-मात्र उपाय बतलाया है। इस तादात्म्य प्राप्त करने के साधन का तर्कपूर्ण विवेचन शुद्ध दर्शन का विषय है, जो शुष्क होने के कारण केवल मस्तिष्क का विषय है। परन्तु जब दार्शनिक अपने विचारों को कविता की प्रणाली में, मस्तिष्क के साथ साथ हृदय को भी स्पर्श करनेवाली भावना प्रधान प्रणाली में व्यक्त करने का प्रयत्न करता है तो वह रहस्यवादी कवि के रूप में दिखाई देता है। इससे यह स्पष्ट है कि रहस्यवादी प्रधानतः दार्शनिक तथा साधक होता है, कवि गौण रूप से। इस श्रेणी में जायसी तथा कबीर आते हैं।

इस दृष्टि से देखने पर वर्तमानकाल में किसी भी कवि को पूर्णतः रहस्यवादी कहना सही नहीं है। उनमें न्यूनाधिक मात्रा में ब्रह्मजिज्ञासा

---

* जायसी ग्रन्थावली—पृष्ठ १६५ (प्रथम संस्करण)।

मिलती अवश्य है. परन्तु वे रहस्यवादी कवि नहीं कहे जा सकते। वे प्रधानतः कवि हैं, दार्शनिक पीछे और साधक तो बिलकुल नहीं। कवि-कल्पना साधक के मार्ग पर बहुत दूर तक नहीं जा सकती। पार्थिव प्रेम को अपार्थिव तथा अलौकिक रूप भी बहुत दूर तक नहीं दिया जा सकता। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि उनमें रहस्य-भावना का आभास-मात्र मिलता है। वर्तमानकाल की कविता में रहस्यात्मक उक्तियाँ लिखने की भी, अन्य प्रवृत्तियों के समान एक प्रवृत्ति है। इससे अधिक जिसने प्रयत्न किया है वहाँ वह पूर्णतः सफल नहीं हो सका।

पंतजी इस दिशा में उचित सीमाओं के भीतर ही रहे हैं। वे साधक नहीं हैं, दार्शनिक का कार्य भी गौण रूप से करते हैं; वे प्रधानतः कलाकार हैं। अतः उनमें रहस्यात्मक भावना का कहीं कहीं आभास-मात्र मिलता है। कभी कभी अनन्त की जिज्ञासा के रूप में वे लिख देते हैं:—

"मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन-मुग्ध किसके बल !" (पृष्ठ १२)

प्रगतिवाद और पंत

समय के साथ साथ कविता के विषय और उनकी व्यंजना की प्रणाली में अन्तर आता रहता है। एक समय था जब हिन्दी में राज्याश्रित कवि-गण नरेशों के युद्ध और प्रेम के गान गाते थे। फिर एक समय आया जब इस संसार के भूखंडों के राजाओं के दरबार से आँख फेरकर भक्त-कवि विश्व के अधिपति के चरणों में 'विनय-पत्रिका' भेजने लगे और 'प्राकृत जन गुनगान' से उनकी वाणी 'सिर धुन कर' पछताने लगी। राज-सभाओं की नूपुर की झंकार तथा मादकता से पूर्ण कविता ने भक्तों की वाणी का स्वर एक बार फिर दबा दिया। अंग्रेजों के आगमन के साथ हिन्दी कविता में अनेक परिवर्तन हुए। रीतिकाल के शृंगार के साथ साथ कविता में देश-प्रेम के भी दर्शन हुए। फिर द्विवेदीकाल की इतिवृत्तात्मक तथा उपदेशात्मक कविताओं की रचना हुई, जिसकी प्रतिक्रिया स्वरूप 'छायावाद' कही जानेवाली रचनाएँ लिखी गईं।

प्रत्येक नवीन प्रयास तथा परिवर्तन अपनी पूर्व धारा की अपेक्षा आधुनिक तथा क्रान्तिकारी होने का दावा करता है। साहित्य में भी यही हुआ। 'छायावाद' की प्रतिस्पर्धा में जो नया 'प्रगतिवाद' आया है वह भी अपने को आधुनिकतम तथा क्रान्ति का अग्रदूत कहता हुआ आया है। रचना अथवा निर्माण की अपेक्षा अभी उसका प्रचारात्मक हल्ला बहुत है। एक समालोचक को किसी काव्यधारा का रूप-निरूपण करने के लिये जितने विस्तार, गहराई तथा सुस्थिरता की आवश्यकता होती है, उतनी अभी उसमें नहीं है, फिर भी उसके रूप निर्धारण का संक्षिप्त प्रयास आगे किया जाता है।

प्रगतिवाद के पीछे साहित्यिक चेतना की अपेक्षा रूस में जन्म लेने वाले मार्क्सवाद का प्रभाव अधिक है और यह भी भारत को अंग्रेजी राज्य तथा योरप के संपर्क की देन है। प्रगतिवाद को 'जीवन और साहित्य का नया दृष्टिकोण' * कहा गया है। मार्क्सवाद जिस प्रकार जीवन के प्रति नवीन दृष्टिकोण है, उसी प्रकार प्रगतिवाद भी है। राजनीति में एकतन्त्र शासन के विरुद्ध प्रजातंत्र ने जन्म लिया। एकतन्त्र शासन सामन्तशाही का पोषक था, प्रजातंत्र पूँजीवाद का। इस पूँजीवाद के विरुद्ध रूस ने अपना साम्यवाद रखा है। प्रगतिवाद के प्रचारक इसी साम्यवाद को कविता में लाने के पक्षपाती हैं। यही उनका 'साहित्य का नया दृष्टिकोण' है। वे अब फूलों और शूलों का, मधु तथा मदिरा का, प्रासाद और वैभव का स्वप्न कवि के लिये निन्द्य समझते हैं। आज उनकी दृष्टि कुदाली चलानेवाले श्रमजीवी एवं खेत जोतनेवाले किसान की ओर गई है।

धार्मिक अथवा दार्शनिक दृष्टिकोण में भी अन्तर हुआ। प्रगतिवादी रूस के स्वर में स्वर मिलाकर कहता है कि प्रत्यक्ष जगत् के

---

* 'जीवन के गान'—सुमन (भूमिका)।

अतिरिक्त अन्य किसी की सत्ता नहीं। ईश्वर, आत्मा अथवा माया के विचार को उन्होंने पूँजीवादियों का भ्रामक फन्दा मात्र माना।

सामाजिक व्यवस्था में आज जो अनेक विषमताएँ हैं उनके दूर करने का उपाय भी साम्यवाद को ही माना है, किसान और मजदूर जिसके आधार स्तंभ तथा नियामक हों।

परिणाम यह हुआ कि कविता के विषय बदल गये। आज किसी प्रासादनिवासिनी षोडशी के प्रेम का वर्णन न करके कविगण किसान की वधू अथवा मजदूरनी के प्रेम को, उसकी आकांक्षाओं को, उसकी वेदना और अनुभूति को चित्रित करने लगे।

केवल इतने से तो काव्य की कोई हानि नहीं। काव्य में लोकोत्तर आनन्द प्रदान करनेवाली वस्तु उसके राजा अथवा रानी तथा देवी अथवा देवता कभी नहीं रहे। उसकी ब्रह्मानन्द प्रदान करनेवाली वस्तु तो उन पात्रों के हृदयस्थ भावों की सरिता को साकार करना है जिसमें पाठक या श्रोता अपने हृदय की अनुभूति को प्राप्त कर आनन्द मग्न होता है। समर्थ कवि इस प्रकार का आनन्द मजदूर और मजदूरनी के अनुभूति के चित्रण में भी प्रदान कर सकता है। परन्तु काव्य की हानि तो तब होती है जब कविता राजनीति के एक नारे के प्रचार की हस्तक मात्र बन जाती है।

विषयों के साथ साथ अभिव्यंजना की शैली में भी अन्तर लाने की आवश्यकता समझी गई है। शुद्ध वास्तविक चित्रण को ही श्रेष्ठ चित्रण समझा जा रहा है। प्रगतिवादी भाषा को सजावटहीन सीधे सादे रूप में प्रस्तुत करने का पक्षपाती है। परन्तु हमतो इसे प्रारंभिक प्रयास करनेवालों के लिये सुरक्षा का स्थान भर मानते हैं। जिनमें प्रतिभा और शक्ति है उनकी उक्तियों में ओज, सफाई और ताजगी अपने आप आ जाती है। शिथिल-प्रयास काल के विनाशक प्रभाव में स्वतः नष्ट हो जायँगे।

यहाँ यह विचार करना भी समीचीन होगा कि क्या हिन्दी में प्रगतिवाद नितान्त नवीन है ? 'गति' का अर्थ है 'बढ़ना' और 'प्र' उपसर्ग का अर्थ होता है 'आगे'। इस प्रकार प्रगति का अर्थ हुआ 'आगे बढ़ना'। अब प्रश्न यह है कि हिन्दी भाषा के जन्म से लेकर आज तक क्या हिन्दी साहित्य बढ़ा नहीं ? और यदि वह बढ़ा तो क्या पीछे की ओर ? हमारे विचार से हिन्दी साहित्य आरम्भ से लेकर आज तक आगे ही बढ़ता रहा है, प्रगति करता रहा है। 'छायावाद' के आगे के प्रवाह का जो रूप अब दिखाई देने लगा है उसका उद्गम भी छायावादी कवियों में था। जिस समय 'प्रगतिवाद' 'वाद' के रूप में नहीं आया था उस समय ही निरालाजी दीन भिखारी को काव्य का विषय बना चुके थे और सियारामशरण की 'मृण्मयी' अथवा गुप्तजी का 'किसान' निम्न वर्ग की अनुभूतियों से पूर्ण हैं। इस प्रकार 'प्रगतिवाद' वर्तमान हिन्दी-साहित्य-धारा के एक छोटे से अंग का विकसित रूप है जिसपर राजनीति तथा रूस के मार्क्सवाद के प्रभाव का आधिक्य है।

आज प्रगतिवाद के नाम से की जानेवाली रचनाओं में जो दो बातें हमें अत्याधिक खटकती हैं उनकी ओर संकेत करके हम आगे बढ़ेंगे।

जैसा ऊपर लिखा जा चुका है यथार्थ-चित्रण प्रगतिवादी कवि अपनी विशेषता समझते हैं। इस यथार्थ के नाम पर जो अनेक अश्लील चित्र प्रस्तुत होते हैं वे कभी भी कल्याणकर नहीं कहे जा सकते हैं। 'प्रगतिवाद' रूपी शिशु अब यौवन के द्वार पर है, यदि वह प्रेम और वासना के गान गाये तो क्षम्य है, परन्तु सीमा के भीतर, नग्न तथा निरावरण नहीं। यौवन की आँधी के पश्चात् जो प्रशान्त और कल्याण-कारी वातावरण उपस्थित होगा उसकी आशा में यह सहा जा सकता है। जो छायावाद 'कामायनी' दे सका वह भी तो प्रारम्भ में ऐसा ही था, अंतर यह है कि इसके वासना-प्रकाशन में रहस्यात्मकता की ओट ली जाती

थी। दूसरी खटकने वाली बात है नवीन प्रगतिवादी कवियों की किसानों और मजदूरों के प्रति झूठी तथा कोरी बौद्धिक सहानुभूति। वीरगाथा काल के कवि स्वयं तलवार बाँधकर युद्ध में जाते थे तथा राजसभाओं के वातावरण का प्रत्यक्ष निरीक्षण करते थे, भक्तिकालीन कवि स्वयं भक्त होते थे, तो क्या प्रगतिवादी कवि मार्क्सवाद की पुस्तकें पढ़कर ही किसान और मजदूरों के मनोभावों का सजीव चित्रण कर सकने में समर्थ होंगे? इस विषय पर कविवर श्री मिलिन्दजी ने ठीक ही लिखा है—"यों तो कल्पना और विश्वव्यापक मानवीय सहानुभूति के सहारे प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के जीवन, वेदना और अनुभव का कुछ न कुछ चित्रण कर ही सकता है, पर, प्रेमी के जीवन की वास्तविक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिये प्रेमी के, और सैनिक के जीवन की अनुभूति के व्यक्तीकरण के लिये सैनिक के जीवन के समान परिस्थितियों में स्वभाविक रूप से पड़ जाना अधिक सहायक होता है।"*

'प्रगतिवाद' के उक्त संक्षिप्त विवेचन के पश्चात् हम अब यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि पंतजी ने प्रगतिवाद को किस रूप में ग्रहण किया है।

पंतजी ने प्रगतिवाद को उपयोगितावाद का समानार्थी माना है। "छायावाद के दिशाहीन शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरनेवाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करनेवाली कल्पना को" पंतजी ने इस उपयोगितावाद में "एक हरीभरी ठोस जनपूर्ण धरती" प्रदान की है। † मधुर कल्पना के सुन्दर लोक में मनोहर संगीत सुननेवाले इस कलाकार को 'छायावाद' से अरुचि हुई और उसने अपने 'गगन ताकनेवाले' कवि से कहा—

"ताक रहे हो गगन! मृत्यु नीलिमा गहन गगन!

---

* नवयुग के गान—प्रारम्भिक निवेदन—पृष्ठ ५-६।

† आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानंदन पंत—पृष्ठ २७।

निःस्पन्द, शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को !
मानव पुण्य प्रसू को !"

पंतजी के काव्य के आलंबन तो बदले ही साथ में कला में भी अन्तर आ गया। इस दिशा में उनका पहला प्रयोग 'युगवाणी' है। उसे कवि ने 'गद्यगीत' के रूप में लिखा है-यह युग गद्य का मानकर। कवि ने अपनी वाणी का कार्य 'जन-मन-विचार' वहन कर सकना मात्र ही माना है। वे लिखते हैं-- "विचार और कला की तुलना में इस युग में विचारों को ही प्राधान्य मिलना चाहिये" † परन्तु जैसा हम एकाधिकबार कह चुके हैं कवि पंत का हृदय और मस्तिष्क कलाकार का हृदय और मस्तिष्क है। उनके हाथों प्रगतिवाद भी कलाहीन न रह सकेगा। ग्राम्या इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। वह गद्य-युग का कोरा गद्यगीत ही नहीं है। और यह सब अनायास नहीं हो रहा है। वे लिखते हैं 'सोने को सुगंधित करने की चेष्टा स्वर्णकार को अवश्य करनी चाहिये।' †

पन्तजी चिन्तनशील तथा सजग साहित्यकार हैं। बाह्य-प्रचार द्वारा प्रभावित होकर वे किसी 'वाद' के पक्षपाती नहीं बने हैं। अध्ययन और चिन्तन के द्वारा उन्होंने कुछ निष्कर्ष निश्चित किये हैं और उनके अनुसार उनकी कल्पना ने कार्य किया है। पन्तजी का यह परिवर्तन प्रगतिवाद के लिये बहुत आशाप्रद है। उनके पीछे उनकी पूर्ण विकसित प्रतिभा तथा साधना है। इस दिशा में उन्होंने प्रयोग प्रारम्भ कर दिये हैं और सफलता भी प्राप्त की है। प्रगतिवाद की हाट में छायावाद का यह भूतपूर्व प्रधान स्तम्भ 'सुगंधित स्वर्ण' की 'राशि राशि' प्रस्तुत कर सकेगा, यह विश्वास है।

---

* आधुनिक कवि—पृष्ठ २६।

† वही—पृष्ठ ३०।

गुंजन-विवेचन

विकास-सूत्र तथा वर्गीकरण

गुंजन पंतजी की कविताओं का एक विशिष्ट संग्रह है। हम इसे सन् १९३२ ई० तक कवि के विकास का प्रतिनिधि संग्रह समझते हैं, साथ ही हमें इसमें कवि के परिवर्तन की दिशा के भी स्पष्ट दर्शन होते हैं। इसमें हमें 'छायावन में वास' करनेवाले गीत-खग के भी दर्शन होते हैं, 'पूर्ण-प्रकाम रूपतारा' की अभ्यर्थना में गाये गए प्रणय के मादक-गान भी सुनाई देते हैं ; इसमें कवि ने 'आत्मा के चिर धन' की भी खोज की है और साथ ही 'सुखमा के शिशु' मानव के गौरव का भी गान किया है ; इसमें एक ओर जहाँ कवि ने 'फूलों के हास' एवं 'कोकिल के कोमल बोल' की हाट लगाई है, वहाँ जीवन के उद्गम पर भी चिन्तन किया है ; इसमें 'शान्त सरोवर का उर' के समान शुष्क चिन्तन प्रधान कविताएँ भी हैं साथ ही अनेक भाव-पूर्ण मनोहर एवं अलंकारिक कविताएँ भी हैं। अतः यह उपयोगी होगा कि हम गुंजन की कविताओं

के विकाससूत्र को समझने का प्रयत्न करें तथा उनका वर्गीकरण करें।

गुंजन में सन् १९१८ ई० से सन् १९३२ तक की ४६ कविताएँ संग्रहीत हैं। कवि की प्रारम्भिक रचना 'वीणा' के समय तक की कविताएँ इसमें मिलती हैं। सन् १९१९ की रचना 'नीरव तार हृदय में' (पृष्ठ ८०) रवीन्द्रनाथ की चयनिका तथा गीतांजलि के गीतों के समान प्रार्थना-परक कविता है। कवि ने उसमें अपने 'मधु संचय' में 'पर-सेवा का मृदु पराग' भरने की प्रार्थना की है। शब्दावलि भी रवीन्द्र के गानों से ली गई है। यह कविता वीणा-काल का प्रतिनिधित्व करती है।

सन् १९२० तथा १९२१ ई० की कोई रचना गुंजन में नहीं है। उस समय कवि 'ग्रंथि' 'उच्छ्वास' और 'आँसू' आदि विफल प्रेम के गान गा रहा था। गुंजन में विफल प्रेम को स्थान नहीं है। हाँ, 'कबसे विलोकती तुमको' (पृष्ठ ४५) का प्रतीक्षा-गान प्रतिवाद स्वरूप है, परन्तु इसमें भी वियोग का विषाद न होकर आशा का भाव तथा रहस्यात्मकता की झलक है। प्रेम और प्रणय जो गुंजन में आया है वह 'नव-मधु की प्रात' में प्रेयसी की मंजुल मूर्ति को देखकर 'मधु के बन में ज्वाल' लगाता हुआ आया है। 'गुंजन' में पंत संयोग-शृंगार के कवि के रूप में दिखाई देते हैं।

सन् १९२२ ई० की दस कविताएँ 'पल्लव' में हैं। 'पल्लव' के उन गानों में कवि कहीं तो 'विहग-कुमारि' से पूछता है कि उसका प्यारा 'सोने का गान' कहाँ से आया है, कहीं 'मुस्कराते गुलाब के फूल' से प्रश्न करता है कि उसने कवि के बचपन को कहाँ से चुरा लिया, कहीं वह 'मधुप-कुमारि' से मीठे-गान सिखाने की मनुहार करता है, कहीं नारी की अभ्यर्थना कर उससे कहता है—

'स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि !

तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार ;'×

कहीं नक्षत्र और बादल के वर्णन में उपमा और रूपकों के ढेर लगा देता है। इसी वर्ष की दो कविताएँ 'गुंजन' में भी हैं। वे 'पल्लव' में सम्मिलित क्यों नहीं की गईं यह निश्चित रूप से समझ में नहीं आता। 'कलरव किसको नहीं सुहाता' गान छोटा बहुत है यद्यपि इसके समान आकार के गान 'पल्लव' में भी है। संभव हैं 'बाला के बाल-जाल' से बचने की भावना की कविता के साथ 'उषा-सी स्वर्णोदय पर भोर' में 'कनक किशोर मुख दिखाकर' कलरव सुनानेवाली प्रेयसी के 'रज को रजत बनानेवाले' स्वर से पूरित गान रखना कवि ने उचित न समझा हो। 'अलि ! इन भोली बातों को' गान पंत की अपेक्षा 'प्रसाद' के 'आँसू' की पंक्तियों से अधिक मेल खाता है। संभवतः इसी कारण कवि ने उसे पल्लव में स्थान न देकर 'गुंजन' में रख दिया है। इसमें कवि ने अपने 'कोमल-भावों' के क्रियाकलाप का चित्रण किया है।

सन् १९२५ के अन्त (दिसम्बर) में कवि ने अपने 'छाया-काल' का गान गाकर पुरातन के 'मदन का दहन' करने तथा 'नवीन अनंग' के सृजन करने के प्रयास का अभिनन्दन किया है। रीतिकालीन कविता-धारा के विरुद्ध कवि ने 'पल्लव' की भूमिका में जो व्यंग्य किये हैं और छायावाद द्वारा जिस नवीन युग के प्रवर्तन का संकेत उसमें किया है उसीको इस कविता में काव्यमय रूप में प्रकट किया है। मानों छायावाद की व्याख्या-सी करता हुआ कवि लिखता है :—

'बदलता बादल-सा नित वेश
तुम्हारा जग था छाया शेष'*

× पल्लव—पृष्ठ ७६।

* पल्लव—पृष्ठ १३२, (प्रथम संस्करण)।

सन् १६२५ के नवम्बर मास में कवि के मानस-जगत् में एक 'रूप-तारा' का उदय हो चुका था जिसने 'मनोनभ-देश' में प्रणय का परिवेश रचकर दीप्त कर दिया। कवि ने 'रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम' (पृष्ठ ६२) जैसी वेगवती रचना की सृष्टि की। किन्तु कवि ने स्पष्ट देखा कि यह रचना छायाओं के देश 'पल्लव' में स्थान पाने योग्य नहीं है। उसका धरातल अधिक ठोस है। कवि पंत ने जो मादक संयोग के प्रणय-गान १६२७ तथा उसके पश्चात् गाये हैं, उनका प्रारम्भ इस रचना से होता है, जिसमें कवि का मानस पुकार उठता है—

'हृदय-नभ-तारा बनि छविधाम
प्रिये! अब सार्थक करो स्वनाम!'

(पृष्ठ ६५)

पन्तजी के प्रणय गीतों का गुंजन में एक विशिष्ट स्थान है। रूप, श्रृंगार और प्रेम का ऐसा वर्णन कवि ने पहले कभी नहीं किया, अब प्रगतिवादी पन्त यदि करेंगे भी तो उसमें वह सूक्ष्म-कल्पना एवं मार्दव नहीं रख सकेंगे। प्रणय निवेदन का यह क्रम चिन्तन-प्रधान वर्ष १६३२ तक में मिलता है जिसमें 'वातास के सौरभ-श्लथउच्छ्वास' से रोमांचित होकर कवि पुकार उठता है—

'आज रहने दो यह गृह-काज,
प्राण! रहने दो यह गृह-काज!'

(पृष्ठ ५१)

गुंजन की सौन्दर्य और प्रेम की कविताओं के विस्तृत विवेचन को आगे के लिये छोड़ हम अब पन्तजी की कविता के उस विषयान्तर पर दृष्टि डालेंगे जो गुंजन का प्रधान विषय है।

हम पहले लिख आये हैं कि सन् १६२८ में अनेक विपत्तियों से त्राण पाकर कवि ने मानव-जीवन पर तात्विक विचार किया। प्रकृति

और सौन्दर्य का कवि मानव और उसके हर्ष-विमर्ष की ओर आकर्षित हुआ। उसने सुख एवं दुख, मुक्ति एवं बन्धन, और संयम तथा भोग का विवेचन किया। एक दृष्टि अपनी कविताओं पर भी डाली। छाया-लोक के अनिश्चित आधार से हट जब कवि इस अधिक ठोस धरातल पर आया तो उसका हृदय आशा से पूर्ण हो उठा। संसार की प्रत्येक वस्तु में उसे एक विशिष्ट सौन्दर्य दिखाई देने लगा। इस प्रकार सन् १९३०, १९३१ तथा १९३२ में मानव-जीवन, आत्मा, संसार आदि पर कवि के तात्विक विवेचन से पूर्ण गान मिलते हैं। साथ ही कवि ने अपनी रचनाओं की प्रवृत्तियों का भी विवेचन किया है। प्रकृति-चित्रण में भी रंग अधिक स्पष्ट एवं उल्लासपूर्ण हैं, चिन्तन का भी प्राधान्य है, विशेषतः 'एकतारा' में।

इस प्रकार संक्षेप में गुंजन के ४२ गानों का वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है :—

(१) 'वीणा' काल की रवीन्द्र की गीतांजलि से प्रभावित प्रार्थना—परक १९१९ का लिखा हुआ एक गान (पृष्ठ ८०)।

(२) पल्लव-काल के १९२२ के लिखे हुए दो गान (पृष्ठ तथा ६७)।

(३) प्रणय और रूप सम्बन्धी ग्यारह गान, जिनमें एक १९२५ का है, तीन १९२७ के, एक १९२८ का, एक १९३० का तथा पाँच १९३२ के हैं। (पृष्ठ ६२, ३६, ४६, ४८, ५०, ५३, ४७, ३७, * ४५, ५१ और ६२) ।

---

* 'झर गई कली' गान अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। यदि इसे विशुद्ध प्रकृति वर्णन का गान न माना जाए तो यह फिर 'फ्री लव' की एक अन्योक्ति मात्र रह जाता है।

(४) प्रकृति का चित्रण तो गुंजन के प्रायः सभी गानों में है परन्तु फिर भी गुंजन के छह गान प्रकृति-चित्रण प्रधान माने जा सकते हैं। जिनमें एक १९२६ का, एक १९२७ का, एक १९३० का एवं तीन १९३२ के गान हैं। (पृष्ठ ७३, ७५, ७८, ३२, ६ तथा १०१) कवि पंत की किसी रचना में प्रकृति के चित्रों का किसी न किसी रूप में न आना ही अस्वाभाविक है, आना तो नितान्त प्राकृतिक है, अतः वर्गीकरण का यह विभाग अधूरा ही है।

(५) कविकी अपनी कविता के विवेचन से पूर्ण तीन गान हैं, जिनमें एक १९२७ का है, और दो १९३० के हैं। (पृष्ठ १०५, १०७ तथा ८१) इनके अतिरिक्त प्रकृति सम्बन्धी कुछ गान भी अन्योक्ति रूप में इस वर्ग में आते हैं।

(६) अन्तिम वर्ग है गुंजन के चिन्तन प्रधान एवं मानव-प्रेम के गानों का, जिनमें से एक १९३० का है (पृष्ठ ७१) एक १९३१ का है (पृष्ठ ७२)। शेष बाईस १९३२ के जनवरी तथा फरवरी मास के लिखे हुए हैं। इन गानों में से एक तो नितान्त शुष्क दार्शनिक विवेचनामय हैं, शेष बहुत ही माधुर्य से पूर्ण हैं।

आगे अब हम गुंजन के 'रूप और प्रेम', 'प्रकृति' तथा 'दार्शनिक विचार' आदि का विवेचन करेंगे। इनके दार्शनिक विचारों से पूर्ण गान काल-क्रम से यद्यपि सबसे बाद की रचनाएँ हैं फिर भी वे गुंजन की प्रतिनिधि कविताएँ हैं अतः उन पर ही सर्व प्रथम विचार करेंगे। कवि ने भी उन्हें गुंजन में सबसे पहले स्थान दिया है।

विचारधारा

"पल्लव और गुंजन काल के बीच में मेरा किशोर भावना का सौन्दर्य-स्वप्न टूट गया। दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी।" * इसी काल में कवि ने ईश्वर, जीव, मुक्ति आदि पर विचार किया जिसका निष्कर्ष गुंजन की १९३२ की रचनाओं में पाया जाता है। जो कवि इस परिवर्तन के पूर्व प्रकृति के रम्य रूपों में (तथा अपनी मानसी के रूप-चित्रण में उलझा हुआ था उसके मनोनभ में) लोक-कल्याण का अरुणोदय हुआ। सन् १९३० में उसने संसार की कल्याण-कामना करते हुए लिखाः—

'जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !'

(पृष्ठ ७९)

पंतजी के दार्शनिक विचार पूर्व और पश्चिम के दर्शन के समन्वय

---

* आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानंदन पंत—पृष्ठ ४।

स्वरूप हैं। पश्चिम के भौतिक दर्शन का भी उनपर प्रभाव है। परन्तु वे पूर्णरूप से आस्तिक हैं। मार्क्सवाद से प्रभावित प्रगतिवाद के पोषक होकर भी वे नास्तिक नहीं बन सके हैं। वे विश्व के लिए नव-जीवन की आवश्यकता तो मानते हैं, परन्तु साथ ही दृढ़ता के साथ घोषित करते हैं।—

'ईश्वर पर चिर-विश्वास मुझे'

(पृष्ठ २६)

इस विश्वास, आस्तिकता तथा आशावादिता को पंतजी नव-जीवन का मूल समझते हैं। उनके बिना सुखमय जीवन प्राप्त नहीं हो सकता।—

'सुन्दर विश्वासों से ही
बनता रे सुखमय - जीवन'

(पृष्ठ २८)

ईश्वर पर विश्वास करके भी पंतजी जीव तथा प्रकृति को नश्वर अथवा मायामात्र नहीं मानते। वे उन्हें मिथ्या कहकर उनसे विरक्ति उत्पन्न करने को कल्याणकर नहीं समझते।

मानव जीवन जन्म-मृत्यु से बद्ध नहीं है। जीव की सत्ता भी चिरन्तन है :—

'चिर जन्म-मरण के आरपार
शाश्वत जीवन - नौका - विहार'

(पृष्ठ १०४)

जीवन की नित्यता की भावना के साथ ही पुनर्जन्म में विश्वास होना भी अवश्यम्भावी है।

जीव के समान पंतजी प्रकृति को भी नित्य मानते हैं। चिरन्तन के साथ साथ प्रकृति सौन्दर्यपूर्ण भी है :—

'प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर,
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर ;'

(पृष्ठ २६)

इसके पश्चात् यह विचार आता है कि जीव को इस संसार में दुःख क्यों होता है ? सुख क्या है ? जीवन की पूर्णता किस बात में है ? मनुष्य का कल्याण कैसे हो ? इस जीवन के पश्चात् मुक्ति कैसे प्राप्त हो ? आदि।

मानव के मन का निरीक्षण कर कवि इस परिणाम पर पहुँचता है कि मनुष्य के 'उर की डाली' में :—

'सबमें कुछ सुख के तरुण-फूल
सबमें कुछ दुख के करुण शूल ;—
सुख-दुःख न कोई सका भूल ?'

(पृष्ठ १७)

दुःख से सभी व्याकुल होते हैं और सभी उसका निराकरण चाहते हैं। कवि के हृदय में भी यह प्रश्न उठता है :—

'आते कैसे सूने पल
जीवन में ये सूने पल !
जब लगता सब विशृंखल,
तृण, तरु, पृथ्वी, नभ-मण्डल !'

(पृष्ठ १३)

इसका कारण कवि बतलाता है कि हमारी आकांक्षाएँ ही हमारे

दुःख का मूल कारण हैं। हम दिन रात उन्नति करना चाहते हैं, कुछ न कुछ पाने की इच्छा रखते हैं और वही हमारे जीवन का रस सुखा देती है:—

'बढ़ने की अति-इच्छा से
जाता जीवन से जीवन।'

(पृष्ठ १४)

परन्तु कवि यह भी नहीं चाहता कि संसार से दुःख का अन्त हो जाए। निरन्तर रहनेवाला सुख भी कल्याण कर नहीं होता। वह मानव-आत्मा पर आवरण डालकर उसे कलुषित बना देता है। अतएव दुःख का भी उपयोग है :—

'दुख इस मानव-आत्मा का
रे नित का मधुमय-भोजन,
दुख के तम को खा-खा कर
भरती प्रकाश से वह मन।'

(पृष्ठ २०)

दुःख उस समय वास्तविक उत्पीड़न बन आता है जब उसका जीवन में स्थायी रूप से निवास जम जाय। इस प्रकार कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है :—

'अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न;'

(पृष्ठ १६)

इसलिये उसका मत है कि जीवन को पूर्ण बनाने के हेतु सुख-दुःख का समान रूप से आते जाते रहना आवश्यक है:—

'सुख-दुख के मधुर मिलन से,
यह जीवन हो परिपूरण;'

(पृष्ठ १६)

पन्तजी ने गुंजन के प्रारंभिक भाग में सुख-दुःख के इस जोड़े पर कुछ बहुत ही सुन्दर गान गाये हैं। मानव जीवन में हास-अश्रु का सुखमय सम्मेलन है:—

'यह साँझ उषा का आँगन
आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर हास-अश्रुमय आनन
रे इस मानव जीवन का!'

(पृष्ठ १६)

कवि 'प्रसाद' के 'आँसू' में भी सुख-दुःख का बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है। वे भी इसी परिणाम पर पहुँचे थे:—

'मानव जीवन वेदी पर
परिणय है विरह मिलन का
सुख-दुख दोनों नाचेंगे
है खेल आँख का मन का।'*

संसार के कल्याण साधन के लिए हमें एक तो स्वयं को पूर्ण बनाना पड़ता है, दूसरे हमें संसार के अन्य प्राणियों के प्रति अपने व्यवहार को नियमित करना होता है। जहाँ तक अपने निजी व्यक्तित्व का सम्बन्ध है कवि का मत है कि हमारे जीवन का उद्देश्य एक विशाल लक्ष्य बनाकर उसकी प्राप्ति का निरन्तर प्रयास करते रहना ही नहीं है। बढ़ने की इस 'अति इच्छा' से जीवन निरानन्द और अपूर्ण बन जाता है। कवि जिज्ञासा करता है—

---

* आँसू—प्रसाद—पृष्ठ ४६—(चतुर्थ संस्करण)।

'क्या यह जीवन ! सागर में
जल-भार, मुखर भर देना !
कुसुमित पुलिनों की क्रीड़ा—
ब्रीड़ा से तनिक न लेना !'

(पृष्ठ १४)

लक्ष्य प्राप्ति के निरन्तर प्रयास के साथ साथ हमें इस बात पर भी ध्यान रखना चाहिए कि हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को आनन्दमय बनाएँ। यही छोटे छोटे क्षण हमारे जीवन का निर्माण करते हैं —

'महिमा के विशद जलधि में
हैं छोटे छोटे से कण
अणु से विकसित जग-जीवन
लघु अणु का गुरुतम साधन !'

(पृष्ठ २८)

इसलिये हमें अपने जीवन के छोटे से छोटे क्षणों को भी आनन्दपूर्ण बनाना चाहिए—

'सागर-संगम में है सुख
जीवन की गति में भी लय,
मेरे क्षण क्षण के लघु कण
जीवन-लय से हों मधुमय।'

(पृष्ठ १४)

संसार के अन्य प्राणियों के प्रति हमारे हृदय में सहानुभूति और प्रेम होना आवश्यक है। इसके लिए कवि यह अनिवार्य समझता है कि हम अपने हृदय को जग-जीवन के ताप में गलाकर स्नेहार्द्र कर लें। तभी हम जीवन की पूर्णतम मूर्ति ढाल सकेंगे। जग-जीवन की ज्वाला का ताप मानव-मन को पवित्र बना देगा—

'तप रे मधुर मधुर मन!
विश्व वेदना में तप प्रतिपल
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल, औ' कोमल,
तप रे विधुर विधुर मन।
अपने सजल स्वर्ण से पावन
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,'

(पृष्ठ ११)

इसी को कवि तप अथवा निज के तथा लोक के कल्याण का मार्ग मानता है। जो मुक्ति संसार से विरक्त तथा विमुख होकर प्राप्त हो वह कवि को अभीष्ट नहीं। रवीन्द्रनाथ ने अपने इस दर्शन को इस प्रकार प्रकट किया है:—

'वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय
असंख्य बंधन माझे महानन्दमय
लभिब मुक्तिर स्वाद'

वैराग्य की साधना से जो मुक्ति प्राप्त हो वह कवि को स्वीकार नहीं है, वह तो संसार के जीवों से रागात्मक सम्बन्ध के बन्धन में फँसकर ही मुक्ति का आनन्द प्राप्त करना चाहता है। परमात्मा ने उसे एक मृत्तिका-पात्र (शरीर) प्रदान किया है, साथ ही उसने संसार में अपने ही नाना वर्ण गंधमय अनेक रूप फैला दिये हैं। उन रूपों से स्नेहमय सम्बन्ध स्थापित कर मानों परमात्मा के अमृत को ही अपने उस मृत्तिका-पात्र में भरकर वह उसे पवित्र करेगा—

'मृत्तिकार पात्र खानि भरि वारंवार
तोमार अमृत ढालि दिबे अविरत
नाना वर्ण गंध मय।'

—'रवीन्द्र'

इसी विचार को पन्तजी ने इस प्रकार व्यक्त किया है :—

'तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गन्धहीन तू गंधयुक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन !
मूर्तिमान बन, निर्धन !'

(पृष्ठ ११)

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षण से प्रेम, उसे आनन्दमय बनाने का प्रयास, संसार के प्रत्येक प्राणी से सहानुभूति, साथ ही अति-इच्छाओं का त्याग कवि ने मानव-जीवन के लिये कल्याणकर बतलाया है। अतिशय साधना भी उसके मत में कल्याणकर नहीं है। वह तो 'सम-इच्छा' को ही साधना मानता है—

'सम इच्छा ही रे साधन'

(पृष्ठ २४)

संसार से प्रेम और सहानुभूति के इस दर्शन का एक अनिवार्य परिणाम हुआ। 'सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि' का प्रेमी पन्त सृष्टि के श्रेष्ठतम अंग मानव का भी प्रेमी हो गया।

मानव के उच्चादर्श तो उसे प्रिय थे ही, मानव की सहचरी 'देवि, माँ सहचरि, प्राण' नारी उसे प्रिय थी ही, अब उसे मायावादियों का क्षण-भंगुर शरीर भी सुन्दर दिखाई देने लगा—

'सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन'

(पृष्ठ २६)

मानव अपनी सम्पूर्णता में—उसके सुख, दुःख, उत्थान-पतन तथा जीवन-मरण सहित प्रिय ज्ञात होने लगा। कवि ने गाया—

'तुम मेरे मन के मानव,
मेरे गानों के गाने;
मेरे मानस के स्पंदन,
प्राणों के चिर पहचाने!'

(पृष्ठ ३५)

इस प्रकार कवि को जग-जीवन मंगलमय मधुमय एवं सुखमय ज्ञात होने लगा।

इस मानव प्रेम में कवि के आगे के विकास के बीज भी वर्तमान थे। जब कवि की कल्पना छायालोक से उतरकर इस सुख-दुःख से पूर्ण जनाकीर्ण पृथ्वी पर पड़ी तो यह भी निश्चित था कि उसका संवेदनशील हृदय उन विषमताओं को भी देखता जो उसके प्रिय मानव को पशु से भी बुरी दशा में डाले हुए हैं। इसी दृश्य ने कवि के दृष्टिकोण को बदल दिया। इसी हृदय-मन्थन के फल-स्वरूप वह वर्तमान समाज-संगठन के प्रति विद्रोही बन गया और उसने कहा—

'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!'*

---

* युगान्त—पन्त—१३ १।

प्रकृति-चित्रण

कवि पन्त का निर्माण प्रकृति के कोमल और सुन्दर प्रांगण में हुआ है। प्रकृतिपरी अपने सम्पूर्ण रूप-वैभव के साथ उसके मानस-देश में नाचती है। पन्तजी के गानों के स्वर में प्रकृति की झंकार है। वे स्वयं लिखते हैं 'कविता करने की प्रेरणा सबसे पहले मुझे प्रकृति से मिली है।'* यही कारण है कि प्रकृति का जितना सजीव चित्रण हमें पन्तजी की रचनाओं में मिलता है उतना अन्य किसी वर्तमान कवि में कम मिलता है।

पल्लव के रचनाकाल तक कवि प्रकृति-चित्रण में ही अधिकतर व्यस्त रहा। उसने संसार की ओर जहाँ भी दृष्टि डाली है, बहुत सकुचाते हुए; और (उस काल की रचनाओं के लिये यह कहना सत्य ही है कि पन्तजी की कल्पना) जनरव से दूर प्रकृति के आँगन में ही

---

* आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानन्दन पन्त—पृष्ठ १।

मुखरित होती है, जनपथ पर आने में उसे बहुत संकोच होता है।

प्रकृति-चित्रण में भी 'गुंजन' पन्तजी की १६३२ तक की प्रतिनिधि रचना है। प्रकृति-चित्रण के प्रगाढ़ प्रेम से लेकर उससे विराग तक की कहानी इसमें है।

प्रकृति के सुन्दर और भीषण दो रूप हैं। जहाँ एक ओर उसमें फूल, कोकिल, निर्झर, वसन्त, मलय-पवन आदि हैं, वहाँ दूसरी ओर शूल, काग, मरुभूमि, पतझड़ और झंझा भी हैं। पन्तजी को प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही अधिक आकृष्ट किया है। उसके भयंकर रूप के प्रति वे 'पल्लव' के 'परिवर्तन' में आकृष्ट हुए हैं। परन्तु वह 'गुंजन' का विषय नहीं।

कवि पन्त की छायावादी कविताओं के मूल में हम प्रकृति की मादकता पाते हैं। जब सृष्टि का कोना कोना सौन्दर्य की मादकता से भर जाता है तो अचानक कवि के हृदय से गान निकल पड़ता है:—

'आज छाया वन-वन मधुमास,
मुग्ध-मुकुलों में गंधोच्छ्वास;
लुढ़कता तृण-तृण में उल्लास,
डोलता पुलकाकुल वातास;
फूटता नभ में स्वर्ण विहान,
आज मेरे प्राणों में गान।'

(पृष्ठ १०६)

प्राकृतिक दृश्यों का स्वतंत्र रूप से अनेक स्थान पर पन्तजी ने चित्रण किया है। वायु का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं:—

'अधर मर्मर युत, पुलकित-अंग,
चूमतीं चल-पद चपल-तरंग,

चटकतीं कलियाँ पा भ्रू-भंग,
थिरकते तृण, तरु-पात।'

(पृष्ठ ७८)

परन्तु, उक्त पँक्तियों में तथा अन्य स्थानों पर भी कवि प्रकृति को मानवरूपों में ढालकर ही चित्रित करता है। उसे वह सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में ही अधिक चित्रित करता है। उक्त पँक्तियों में वायु की नारी रूप में कल्पना की गई है। वह झंझावात नहीं है, वह तो 'लघु लघु गात' 'निखिल छबि की छबि' है। कवि की कल्पना के सम्मुख प्रकृति के अंग साकार नारी, बालक, पशु अथवा पत्ती बनकर आते हैं। इसका विकसित रूप 'ज्योत्स्ना' में मिलता है।

पन्तजी को कहीं प्रकृति मानव के मनोभावों के रंग में रंगी हुई भी दिखाई देती है। यह कवियों की बहुत पुरानी परिपाटी है। इसमें प्रकृति हृदय के भावों के अनुरूप हर्षोत्फुल्ल अथवा विषादमय दिखाई देती है। गुंजन में 'चाँदनी' के ऊपर दो कविताएँ हैं। एक में कवि के हृदय का विषाद फूट निकला है। उसे चाँदनीः—

'जग के दुख से जर्जर-उर,
बस मृत्यु-शेष है जीवन!!'

(पृष्ठ ३४)

के रूप में दिखाई देती है, परन्तु दूसरे स्थल परः—

'वह फूली बेला की बन
जिसमें न नाल, दल, कुड्मल,
केवल विकास चिर निर्मल
जिसमें डूबे दस दिशि-दल।'

(पृष्ठ २८)

के समान दिखाई देती है।

'गुंजन' चिन्तन प्रधान है। इसमें प्रकृति-चित्रण का उपयोग भी अनेक स्थल पर कहीं कहीं अन्योक्ति के रूप में, कहीं कहीं विचारपूर्ण निष्कर्ष निकालने के लिये तथा कहीं कहीं आध्यात्मिकता की व्यंजना करने के लिये किया गया है।

कवि ने अपने काव्यगत सिद्धान्तों का निरूपण अपने गीतों को 'विहग' मानकर किया है:—

'तेरा कैसा गान,
विहगम! तेरा कैसा गान?'

(पृष्ठ १०५)

कहीं कहीं अपने गीतों को पक्षी मानकर कवि ने सुन्दर अन्योक्तियाँ लिखी हैं:—

'विहग, विहग,
फिर चहक उठे ये पुंज-पुंज,
कल-कूजित कर उर का निकुंज'

(पृष्ठ ३२)

'झर गई कली' एक सुन्दर अन्योक्ति है। सबसे सुन्दर अन्योक्तिमय प्रकृति चित्रण 'गुंजन' के प्रथम गान में है। (देखिए टीका-भाग)

कवि ने कहीं कहीं प्रकृति के दृश्य का चित्रण कर उनसे अनेक दार्शनिक निष्कर्ष निकाले हैं। 'एक तारा' में इस प्रकार की योजना विशेष रूप से मिलती है, और 'नौका-विहार' के अन्तिम भाग में भी कवि ने यह प्रयास किया है।

सौन्दर्य-चित्रण में प्रकृति का उपयोग अनेक रूप से होता आया है। इस दिशा में 'गुंजन' में प्रकृति का प्रयोग प्रधानतः तीन प्रकार से किया गया है।

पहले तो वह साधारण रूप है जिसमें कवि प्रकृति के उपकरणों की उपमा नारी के अंग प्रत्यङ्गों से देता है।

दूसरे, कवि अपनी रूप-रानी को प्रकृति से भी श्रेष्ठ मानकर चलता है। इसका 'गुंजन' में बाहुल्य है। मानों उसकी उस सौन्दर्य-प्रतिमा से ही प्रकृति की प्रत्येक सुन्दर वस्तु सुन्दरता प्राप्त करती है:—

'सीखते होंगे उड़ खग-बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद;
चूम लघु-पद-चंचलता, प्राण!
फूटते होंगे नव जल-स्रोत,'

(पृष्ठ ४२)

उसके चंचल चरण के स्पर्श से अरुण अशोक मंजरित होते हैं (पृष्ठ ५७) उसकी मंजुल मूर्ति को देखकर मधु के वन में ज्वाल लग जाती है (पृष्ठ ५६) और—

'प्रिये, कलि-कुसुम-कुसुम में आज
मधुरिमा मधु, सुखमा सुविकास,
तुम्हारी रोम-रोम छवि-व्याज।
छा गया मधुवन में मधुमास।'

(पृष्ठ ५८)

कहीं-कहीं कवि ने प्रकृति के सुन्दरतम उपकरणों को एकत्रित करके कल्पना द्वारा बहुत ही मनोहर सौन्दर्य-चित्र प्रस्तुत किए हैं। मेघाच्छन्न आकाश में इन्द्रधनु के उदय के समय अपनी 'निखिल कल्पनामयि' अप्सरा का कवि अत्यन्त भव्य चित्र प्रस्तुत करता हुआ लिखता है:—

'रवि-छवि-चुम्बित चल-जलदों पर
तुम नभ में, उस पार,
लगा अंक से तड़ित-भीत शशि—
मृग-शिशु को सुकुमार,
छोड़ गगन में चञ्चल उडुगण
चरण चिह्न लघु भार
नाग - दन्त - नत इन्द्रधनुष - पुल
करतीं तुम नत पार।'

(पृष्ठ ६५)

पन्तजी ने कहीं कहीं प्रकृति के द्वारा दृष्टान्त तथा उपदेश भी दिये हैं। जीवन को सरिता मानकर उन्होंने अपने जीवन सम्बन्धी सिद्धान्तों को समझाया है। कहीं वे प्रकृति से उपदेश लेते हुए लिखते हैं:—

'वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।'

(पृष्ठ २२)

जिस कवि को प्रकृति से ही कवित्व का दान मिलता था, जिस कवि को:—

'खोल कलियों ने उर के द्वार
दे दिया उसको छवि का देश;
बजा भौंरों ने मधु के तार
कह दिए भेद भरे संदेश;'

(पृष्ठ ७३)

उसीने प्रकृति से अब पीठ फेरी। उसे प्रकृति की अपेक्षा मानव अधिक आकर्षक ज्ञात हुआ। सम्पूर्ण प्रकृति में अब उसे मानव का सौन्दर्य ही दिखने लगाः—

'सीखा तुमसे फूलों ने
मुख देख मन्द 'मुसकाना,
तारों ने सजल-नयन हो
करुणा-किरणें बरसाना।'

(पृष्ठ १५)

प्रकृति के इस कवि में जो परिवर्तन हुआ उसके कारण यह प्रकृति से भी विरक्ति दिखाने लगा। संसार की कठोर वास्तविकताओं की विभीषिका ने कवि के प्रकृति-विषयक धारणाओं को बदल दिया। वे अब कोरा प्रकृति-चित्रण समाज के लिये अहितकर समझने लगे। उन्होंने अपने इन विचारों को इस प्रकार व्यक्त किया है—

'अब मैं सोचता हूँ कि प्राकृतिक दर्शन, जो एक निष्क्रियता की हद तक सहिष्णुता प्रदान करता है और इस प्रकार से प्रकृति को सर्व शक्तिमयी मानकर उसके प्रति आत्म-समर्पण सिखलाता है, वह सामाजिक जीवन के लिये स्वास्थ्यकर नहीं है।'*

---

* आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानन्दन पन्त—पृष्ठ ३।

रूप और प्रेम

रूप का जगत् सबके हृदय को आकर्षित करता है। पन्तजी ने उसे किशोर प्रवृत्ति* कहा है। इससे हम सहमत नहीं। हमारा मत तो यह है कि रूप का विश्व मानव-हृदय को सदा ही आकर्षित करता रहता है। उसका आयु से सम्बन्ध नहीं है। यह अवश्य है कि रूप के विषय में मान और दृष्टिकोण बदलते रहते हैं। बाल, किशोर, युवा, प्रौढ़ और वृद्ध रूप को देखकर भिन्न-भिन्न रूप से प्रभावित होंगे, पर होंगे अवश्य। कोमलता और सौन्दर्य के कवि पन्त को भी रूप और प्रेम ने आकर्षित किया है। परन्तु कवि पन्त की प्रेम-व्यंजना स्थूलता और स्पष्टता से दूर भागती सी दिखाई देती है; विशेषतः गुंजन के गानों में।

पन्तजी के प्रेम के गान हम दो स्पष्ट भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहले भाग में १९२१ के अन्त तक के विरह-गान हैं, जिनमें निराश

---

* आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानन्दन पन्त—पृष्ठ ७।

प्रेम के उच्छ्वास और आँसू हैं। दूसरे भाग में हैं १६२५ में और उसके पश्चात् लिखे हुए मादक प्रेम के गान, जिनमें कवि ने अपने कल्पना-लोक में मधुवन की वसन्तश्री के बीच अपनी 'रूप-तारा' को खड़ा करके संयोग शृंगार के गान गाये हैं।

इस सम्बन्ध की सबसे पहली रचना पल्लव का 'मोह' है। इसमें कवि 'बाला के बाल-जाल' के प्रभाव का अनुभव तो करता है, परन्तु प्रकृति-प्रेम उस पर विजयी होता है। वह भ्रू-भंगों का अपमानसा करता हुआ कहता है :—

'तजकर तरल तरंगों को,
इन्द्रधनुष के रंगों को,
तेरे भ्रू भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग सा मन,
भूल अभी से इस जग को!'*

इसके पश्चात् 'ग्रन्थि', 'उच्छ्वास' और 'आँसू' आते हैं। निराश प्रेम की (जिसे चाहें तो विप्रलंभ शृंगार कहिये) रचनाओं में एक ही भावना परिव्याप्त है। 'ग्रन्थि' के असफल प्रेम को अंकित कर कवि के हृदय का ज्वार शान्त न हुआ, अतः उसने 'उच्छ्वास' और 'आँसू' लिखे। पन्तजी के काव्य में १६२० की 'ग्रन्थि' के प्रकरण की समाप्ति १६२२ की 'स्मृति' में हुई है। †

सन् १६२५ में कवि की 'मानसी' के (पृष्ठ ६५) 'रूप-तारा' के रूप में 'साकार' दर्शन हुए। यहाँ से कवि का शृंगार कुछ अधिक स्पष्ट तथा मुखरित हुआ है। उसने अपनी रूपसी के सौन्दर्य का चित्रण किया है, अपने और उसके मानसिक भावों का वर्णन किया है और

---

* पल्लव—पृष्ठ ४४—(प्रथम संस्करण)।
† वही—पृष्ठ ६७—(प्रथम संस्करण)।

साथ ही अपने शृंगार को कहीं निरावरण नहीं होने दिया। कवि ने प्रत्येक स्थल पर यह संकेत कर दिया है कि उसकी कविताओं का प्रेम और उसकी प्रेयसी केवल कल्पना-मात्र हैं। इस भुलावे के आवरण से चित्त को कुछ आघात अवश्य लगता है, परन्तु इन गानों में अनुभूति की इतनी तीव्रता और गहराई है कि उनका पूर्ण प्रभाव पड़ता है।

इस क्रम में सर्वप्रथम रचना, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, १९२९ की है। इसमें नव-यौवन पर रूप के मदिर प्रभाव का चित्रण है। प्रेमी का हृदय अपनी प्रेयसी के अलौकिक रूप को देखकर एकाएक पुकार उठता है:—

'रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम;
मृगेक्षिणि! सार्थक नाम।'

(पृष्ठ ६२)

इस रूप-तारा के प्रकाश ने प्रेमी के हृदय को पूर्ण रूप से परिपूरित कर दिया:—

'उषा-सी स्वर्णोदय पर भोर
दिखा मुख कनक-किशोर;
प्रेम की प्रथम मदिरतम-कोर
दृगों में दुरा कठोर;
छा दिया यौवन-शिखर अछोर
रूप किरणों में बोर;'

(पृष्ठ ६१)

यहाँ तक कि प्रेमी की सम्पूर्ण कल्पना में सदा प्रेयसी का ही अधिवास हो गया:—

'कल्पना तुममें एकाकार,
कल्पना में तुम आठों याम;'

(पृष्ठ ६५)

सन् १९२७ के कवि ने रूप और प्रेम के तीन गान गुंजन में दिये हैं। इनमें 'भावी पत्नी के प्रति' कविता भी है।

'भावी पत्नी के प्रति' कविता में कवि ने अपनी प्रेयसी का भाव-चित्र दिया है। इसमें रूप और प्रणय के चित्र बहुत ही सुन्दर और सजीव हैं। साथ ही वह भावी पत्नी के प्रति होने के कारण केवल काल्पनिक हैं। कवि को यह भी विश्वास नहीं कि यह भावी पत्नी केवल कल्पना-मात्र है, अथवा उसका कहीं परिमेय अस्तित्व भी है:—

'कल्पना हो, जाने, परिमाण ?'

(पृष्ठ ४०)

कवि अपनी इस काल्पनिक प्रेयसी के शैशव से लेकर यौवन तक का विकास चित्रित करता है। अन्त में वह उस भावी 'अज्ञात' प्रणय-मिलन की कल्पना करता है जब वह अलौकिक रूपराशि 'जड़ित-पद, नमित-पलक-दृगपात' पास आने में संकोच करेगी और जबः—

'धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर-नारी संसार
मिलेगा नव-सुख से नव-बार;
अधर-उर से उर-अधर समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान;
प्रिये, प्राणों की प्राण !'

(पृष्ठ ४४)

संसार की प्रत्येक सुन्दर वस्तु में उसकी छाया दिखाई देती है। उसका ध्यान आते ही प्रकृति की सम्पूर्ण सौन्दर्यश्री की आभा नेत्रों के सम्मुख आ जाती है:—

'मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर-विलास,
विश्व-सुखमा ही का संसार
दृगों में छा जाता सोल्लास,
व्योम बाला का शरदाकाश;
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!'

(पृष्ठ ४१)

प्रकृति की प्रत्येक मनोरम वस्तु मानों उसी बाला से मनोहरता सीखती है, मलय पवन में जो सुगन्ध है वह इसी के कचजाल से ली गई है, विहगगण उसीसे कलरव, केलि और विनोद सीखते हैं, यही नहीं:—

'चूम लघु-पद-चञ्चलता, प्राण!
फूटते होंगे नव जल-स्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!'

(पृष्ठ ४२)

दृष्टिपात से फूलों की, तथा चरणपात से झरनों की सृष्टि कविगण बहुत प्राचीन काल से करते रहे हैं। विद्यापति ने लिखा है:—

जहँ जहँ पग जुग धरई
तहँ तहँ सरोरुह झरई

जहँ जहँ नयन निपात
तहँ तहँ सरोरुह पाँत।'

'दिनकर' ने भी लिखा हैः—

'दृष्टि फेर' तुमने जिस ओर
खिल गई कमल पँक्ति अम्लान'

पन्तजी ने मुस्कान से कलियाँ बखेर दी हैं।

कवि ने इस काल्पनिक भावी प्रणय को दो व्यक्तियों में सीमित नहीं रखा है। जब यह प्रेमी और प्रेमिका मिलेंगे उस समय संसार का सारा नारीत्व और नरत्व प्रथम मिलन की तीव्रता से अभिसार करेगा। यह 'चिर गूढ़-प्रणय आख्यान' उस समय तक चलेगा जब तक कि—

'रुक जावेगा अनजान
साँस-सा नभ उर में पवमान,
समय निश्चल, दिशि-पलक समान;
अवनि पर झुक आवेगा, प्राण!
व्योम चिर विस्मृति से म्रियमाण;
नील-सरसिज-सा हो-हो म्लान',

(पृष्ठ ४४)

इस वर्ष (१९२७) की दो प्रणय सम्बन्धी रचनाएँ गुंजन में और हैं। पहली में कवि ने अपनी प्रणयनी के सौन्दर्य का प्रकृति पर उत्फुल्लताकारी प्रभाव अंकित किया है। कवि ने जब एक दिन सबेरे देखाः—

'आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुंद-कलियों की कोमल-प्रात।'

(पृष्ठ ४६)

तो उसने इसके कारण पर विचार किया। उसे निश्चय हो गया कि उसकी प्रेयसी मुस्करा दी होगी, इसी कारण यह सौन्दर्य-छटा फैल गई है। वह अपनी प्रेयसी से प्रश्न करता है:—

'मुसकुरा दी थी क्या तुम, प्राण !
मुसकुरा दी थी आज विहान।'

(पृष्ठ ४६)

दूसरे गान में कवि ने लिखा है 'हे मृगेक्षिणी तुम्हारे नेत्ररूपी नीलाकाश में मेरा मनरूपी अनजान पक्षी खो गया है। उस सजल, श्यामल और अकूल आकाश में मेरा मन निराधारसा हो गया है। वह अपना संसार कैसे बसायेगा'। (पृष्ठ ४६)

१६२८ की एक रचना में भी प्रेम के विषय में ऐसी ही एक उत्प्रेक्षा की गई है। उसमें जीवन की नवल डाल पर प्रेम-विहग का वास बना लेने की कल्पना है, जिससे सारा शरीर रोमांचित हो गया, हृदयोच्छ्वास उमड़ने लगा, सम्पूर्ण जीवन मादकता से भर गया। इसमें प्रेम के मुग्धकर प्रभाव का चित्रण है।

यद्यपि १६३२ में 'नील नलिनसी आँखों' के वर्णन में एक गान लिखा गया है, (पृष्ठ ४७) परन्तु शेष दो प्रेम और रूप के गान बहुत सुन्दर हैं; एक तो १६३० का 'मधुवन' और दूसरा १६३२ का 'आज रहने दो यह गृह-काज'।

नव-वसन्त का आगमन हो रहा है। यह वसन्तागमन उस मंगल-वेला में हो रहा है जब प्रेमी के अन्तःकरण को प्रेयसी का रूप पूर्ण रूप से आवृत किये हुए है। उसे अपने मधुवन में माधव के मादक प्रभात में जो सौन्दर्य दिखता है वह उसे अपनी प्रेयसी का प्रतिबिम्ब ज्ञात होता है। उसे नव-मधु की प्रात में प्रेयसी की मुख-छबि दिखाई देती है, मधु-प्रात के उन्माद में उसके शयन-शिथिल नयनों का मदिरालस

दिखाई देता है, उस प्रात की स्वर्णिमा में प्रेयसी के लाज के विनत-वृन्त पर झुके हुए सकाम मुख-अरविन्द की आभा दिखाई देती है। इसी कविता के दूसरे भाग में कवि ने मधुवन के किंशुक, अनार, कचनार, पाटल, गुलाब, पलाश, तिलक, अशोक, प्रियंगु, चंपक, कनियार, मन्दार तथा लवंग आदि के वृक्ष, एवं माधवी, बेला आदि की बेलें खिला दी हैं। इन वृक्षों के परिगणन से प्रिय-प्रवास के प्रकृति-वर्णन का स्मरण हो आता है।

प्रेयसी की उपस्थिति के कारण ही:—

> 'आज वन में पिक, पिक में गान,
> विटप में कलि, कलि में सुविकास,
> कुसुम में रज, रज में मधु, प्राण!
> सलिल में लहर, लहर में लास।'

(पृष्ठ ६०)

यह सब देखा पहले भी था, परन्तु आज प्रेम के पावन स्पर्श ने हृदय के नेत्र खोलकर उनका चमत्कार प्रकट कर दिया।

इसी मादक वातावरण से अधीर होकर मानों प्रेमी का हृदय अपनी प्रेयसी से मनुहार कर उठा:—

> 'आज रहने दो यह गृह-काज,
> प्राण! रहने दो यह गृह-काज!
> आज चंचल-चंचल मन - प्राण,
> आज रे शिथिल शिथिल तन भार;
> आज दो प्राणों का दिन-मान
> आज संसार नहीं संसार!
> आज क्या प्रिये, सुहाती लाज!
> आज रहने दो सब गृह-काज!'

(पृष्ठ ५२)

रूप के गानों में 'अप्सरा' (पृष्ठ ६२) का विशिष्ट स्थान है । कवि ने इस रचना में सौन्दर्य की अधिष्ठात्री देवी की अप्सरा के रूप में कल्पना की है । वह पुञ्जीभूत कल्पना 'निखिल कल्पनामयि' है । कवि की यह अप्सरा शैशव से ही 'माँ की भाँति' शिशु के साथ रहती है । शिशु जब अबोध भाव से हँसता है अथवा सोते में ओठ हिलाता है तो मानों इसी अप्सरा के नीरव-गान से आनंदित होता है । बालकगण कहानियों में परियों के देश में भ्रमण करते हैं और यौवन के पदार्पण के समय युवकों को प्रेयसी के अंग प्रत्यंग में इसी 'रूप-रानी' का आभास मिलता है, प्रत्येक युवक अपनी प्रेयसी को साक्षात् अप्सरा समझता है । युवतियों के हृदय में इसी सौन्दर्य की देवी की आभा रहती है ।

स्वर्ग में भी जो कुछ सुन्दर है वह इसी रूप-भाण्डार की आभा से दीप्त है और प्रकृति के सुन्दरतम दृश्य इसी के क्रिया-कलापों से सम्बद्ध हैं ।

इस पृथ्वी की नारियों को बंकिम दृष्टिपात करने की शिक्षा भी यह सुन्दरता की देवी देती है:—

'बाल युवतियों की सरसी में
चुगा मनोज्ञ मराल,
सिखलाती मृदु रोम-हास तुम
चितवन कला अराल।'

(पृष्ठ ६५)

इस सौन्दर्य की देवी के परिधान और अलंकार भी अत्यन्त सूक्ष्म तथा कोमलतम हैं:—

'गौर-श्याम तन, बैठ प्रभा-तम,
भगिनी-भ्रात सजात
बुनते मृदुल मसृण छायांचल

तुम्हें तन्वि ! दिनरात;
स्वर्ण-सूत्र में रजत-हिलोरें
कंचु काढ़तीं प्रात,
सुरँग रेशमी पंख तितलियाँ
डुला सिरातीं गात ।'

(पृष्ठ ९६)

वह रूपसी 'तुहिन बिन्दु में इन्दु रश्मि' के समान सोती है, 'नील रेशमी तम' उसके बाल हैं, उषा उसकी पद-लालिमा है और ज्योत्स्ना-मंडित मेघ उसके उत्फुल्ल पंख हैं ।

यह रूप की प्रतिमा जब एक सुप्रभात में जग रूपी जलधि में सौन्दर्य-पद्म के समान खिली तबः—

'भृंगों-से अगणित रवि, शशि, ग्रह,
गूँज उठे अज्ञात,
जगज्जलधि हिल्लोल-विलोड़ित,
गन्ध-अन्ध दिशि-वात ।'

(पृष्ठ ९८)

प्रत्येक युग अपनी अपनी भावना के अनुसार अपनी 'अप्सरा'-अपनी सौन्दर्य देवी की कल्पना कर लेता है, और कबीर की माया के समान सुर-नर-मुनि सब पर उसका प्रभाव पड़ता है :—

'प्रति युग में आती हो रंगिणि !
रच रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि-ईप्सित-अप्सरि !
त्रिभुवन भर में लीन !'

(पृष्ठ ९९)

कवि ने अपनी प्रशस्त कल्पना द्वारा रूप की देवी में पूर्ण सौन्दर्य की प्रतिष्ठा तो की ही साथ ही उसे सुन्दर महानता भी प्रदान कर दी है। यह पुन्जीभूत सौन्दर्य की देवी नित्य है, अनादिकाल से ईश्वर की सृष्टि—सुर, नर, मुनि सभी इसके उपासक रहे हैं और रहेंगे।

'छायावन' का 'गीत-खग' *

आत्माभिव्यंजन वर्तमान कविता की एक प्रधान प्रवृत्ति है। अपने मनोभावों के वेगपूर्ण तथा तीव्र प्रकाशन ने गीतिकाव्य को जन्म दिया है। इसी प्रवृत्ति से प्रेरित होकर वर्तमान कवियों ने ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं जो उनकी अन्तर्प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालती हैं और उनके आलोचकों के आक्षेप का उत्तर भी देती हैं।

पन्तजी भी इस प्रकार के गान लिखते रहे हैं। सर्वप्रथम हमें इस प्रकार का प्रयास 'पल्लव' में मिलता है। उसकी प्रथम रचना (१९२४)

---

* इस अध्याय में हम गुंजन के उन गानों का विवेचन करना चाहते हैं जिनमें कवि ने अपने कवित्व के विषय में विचार प्रगट किये हैं। कवि ने इनमें अपने गानों को 'विहग' अथवा 'खग' कहा है और छायावाद को 'छाया-वन'। उपयुक्त शीर्षक ध्यान में न आने के कारण हमने उक्त वाग्बन्ध का प्रयोग किया है।

में कवि ने अपनी रचनाओं की 'पल्लव-बाल' से समता की है, उन्हें अपने विकास का प्रारंभिक रूप माना है:—

'न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग!' †

किन्तु उनके विषय में वह आशापूर्ण है, उसे विश्वास है कि

'फूटेगा कल गुंजित मधुमास,
मुग्ध होंगे मधु से मधु बाल,
सुरभि से अस्थिर मरुताकाश!' *

'पल्लव' की अन्तिम रचना में (१९२५) कवि ने 'छायावाद' का समर्थन किया है तथा उसे आशीर्वाद दिया है। प्राचीन काव्य-पद्धति पर जो आवेश-पूर्ण आक्रमण 'पल्लव' के 'प्रवेश' में किये गये हैं उसी आवेश के दर्शन कवि की इन पंक्तियों में होते हैं:—

'स्वस्ति मेरे अनंग-नूतन!
पुरातन, मदन-दहन!' ×

जिस प्रकार प्राचीन काल में पार्थिव मदन का दहन हुआ था और अपार्थिव 'अनंग' का जन्म हुआ था, उसी प्रकार रीतिकालीन अलंकृत काव्य तथा द्विवेदी-काल की इतिवृत्तात्मक रचनाओं को समाप्त कर यह सूक्ष्म और छायामात्र 'छायावाद' प्रारम्भ हुआ है। वह छायावाद 'सुप्त-स्वप्नों की सजग' + प्रभात है।

सन् १९२६ के जो गान 'गुंजन' में संग्रहीत हैं (पृष्ठ ७२) उसमें

---

† पल्लव—पृष्ठ २—(प्रथम संस्करण)।

* पल्लव—पृष्ठ ३।

× वही—पृष्ठ १३२।

+ अब पन्तजी इस अनंग को भी 'टाटा आयरन वर्क्स' की 'चाबी छाप सेफ' में बन्द कर देना चाहते हैं।

प्रकृति का कवि बोल रहा है। उसमें उस प्रकृति की मनोरम वस्तुओं में कविता की सामग्री मिलती है, कलियाँ अपना हृदय खोलकर 'छबि का देश' देती हैं, भौंरे 'भेद भरे संदेश' कहते हैं, और

'दूर, उन खेतों के उस पार,
जहाँ तक गई नील-झंकार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार
स्वर्ग की परियों का संसार;
वहीं, उन पेड़ों में अज्ञात
चाँद का है चाँदी का वास,
वहीं से खद्योतों के साथ
स्वप्न आते उड़-उड़ कर पास।
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान
मिला कवि को निज गान!'

(पृष्ठ ७४)

१९२७ में (पृष्ठ १०४) भी कवि प्रकृति के मोह से आवृत दिखाई देता है। कवि कहता है कि जब प्रकृति आनन्द से तथा नवजीवन से परिपूर्ण हो जाती है तो अनायास तथा अनजाने में मेरे प्राणों में गान भर जाते हैं।*

इस 'छायावन' में कवि के गीत रूपी खगों के गानों का समर्थन 'गुंजन' का मानव-प्रेमी कवि भी करता रहा है। प्रगतिवादी पन्त ने अवश्य उनका तिरस्कार प्रारम्भ कर दिया है।

पन्तजी ने अपने कवि की अभ्यर्थना में सन् १९३० तथा १९३२ में कुछ अत्यन्त सुन्दर गानों की रचना की है। वह अपने

---

* उद्धरण पीछे पृष्ठ ५९ पर देखिये।

कविन्व को—'दूर वन के राजकुमार' (छायावादी) को सम्बोधित करके कहता है :—

'सहज चुन-चुन लघु तृण, खर, पात,
नीड़ रच-रच निशि दिन सायास,
छा दिए तूने, शिल्पि-सुजात!
जगत की डाल - डाल में वास।'

(पृष्ठ ८२)

और इस प्रकार—

'शून्य नभ में भर दी अज्ञात
मधुर-जीवन की मादक तान।'

(पृष्ठ ८२)

उसने अपनी मादक तान सुना सुना कर और सोए हुए जगत् में अपने स्वप्निल गाने गा-गाकर—

'स्वर्ण से भरदी प्रथम-प्रभात,
मंजु-गुंजित हो उठा-अजान
फुल्ल जग-जीवन का जलजात।'

और

(पृष्ठ ८२)

'बहती रोओं में मलय-वात,
स्पन्दित उर, पुलकित पात-गात,
जीवन में रे यह स्वर्ण प्रात!
नव रूप, गंध, रँग, मधु, मरन्द,
नव आशा, अभिलाषा अमन्द,
नव गीत गुंज, नव भाव-छंद,'

(पृष्ठ ३३)

इसका बहुत सुन्दर प्रभाव पड़ा। जगत में नव-वसन्त का आगमन हुआ, और—

> 'वन वन, उपवन—
> छाया उन्मन-उन्मन गुंजन,
> नव-वय के अलियों का गुंजन!'
>
> (पृष्ठ ६)

धीरे धीरे यह नवयुग वसन्त अपने सम्पूर्ण वैभव के साथ दिखाई देने लगा और उसमें नवीन कवि-भ्रमर 'जीवन-मधु-संचय' करने लगे।

प्रकृति का कवि जब मानव का कवि बना तो उसने 'कलियों के छबि के देश' तथा 'भौंरों के भेद भरे संदेश' के स्थान पर संसार के प्राणियों से भाव ग्रहण करना प्रारम्भ किया। जब उसे 'कुसुमित अंग समूह' मिलता तो 'नयनों के नव-मुकुलित मधुवन' से अथवा आँखों की खिड़कियों से—

> 'उड़-उड़
> आते ये आते मधुर—विहग,
> उर-उर से सुखमय भावों के
> आते खग मेरे पास सुभग।'
>
> (पृष्ठ १६)

और 'जीवन की चंचल सरिता' में मन की जाली डाल-डाल कर कवि भाव रूपी मनोहर मछलियाँ फँसाने लगा। (पृष्ठ ७०)

यह तो हुआ कि 'अखिल उर-उर में' कवि के गान गूँजने लगे और 'चींटियों की-सी काली-पाँति' (पृष्ठ १०७) बनाकर कवि के गीत 'जग जग के छोर' छूने को चल दिये, परन्तु इसमें परमार्थिक लाभ क्या हुआ? इसका उत्तर कवि देता है कि हे सर्वव्यापी प्रभु! मेरे

गीतों में जो पुलक है, वह तुम्हारे चरणों के स्पर्श के कारण ही है। जहाँ तुम्हारे पुनीत पद स्पर्श करते हैं, वह स्थल सुन्दरता से पूर्ण हो जाता है, मैं सुन्दरम् का कवि हूँ, अतः उस सुन्दर स्थल के सम्बन्ध में मैं रचना करता हूँः—

'हँस पड़े कुसुमों में छबिमान
जहाँ जग में पद-चिह्न पुनीत,
वहीं सुख के आँसू बन, प्राण!
ओस में लुढ़क, दमकते गीत!'

(पृष्ठ १०८)

और इस प्रकार मेरे गीतों का विषय तुम्हीं हो और मेरे गीतों के स्वर में मेरे प्राण मिले हुए हैंः—

'बधु! गीतों के पख पसार
प्राण मेरे स्वर में लयमान,
हो गये तुम से एकाकार
प्राण में तुम औ' तुम में प्राण।

(पृष्ठ १०८)

भाषा और शैली

कवि के भाव-जगत् का दर्शन कर लेने के पश्चात् अब एक दृष्टि कवि की भाषा पर तथा उसके भावों के व्यक्त करने की रीति—उसकी शैली पर भी डाल लेना उपयोगी होगा। भाव और विचार यदि काव्य की आत्मा हैं तो भाषा उसका शरीर। सुगठित और स्वस्थ शरीर में सुन्दर आत्मा तथा मन के निवास से ही पूर्ण मानव बनता है, उसी प्रकार परिष्कृत, सुव्यवस्थित तथा भावानुकूल भाषा द्वारा व्यक्त मनोहर भाव तथा विचार श्रेष्ठ काव्य प्रस्तुत करते हैं।

पन्तजी के कविता-काल के पूर्व खड़ी बोली की काव्य-भाषा के रूप में प्रतिष्ठा की जा चुकी थी। द्विवेदीजी तथा उनके समकालीन कवियों के प्रयत्न से पन्तजी को खड़ी बोली कविता में निर्विवाद रूप से प्रचलित मिली। परन्तु उसमें कर्ण-कटुता विद्यमान थी, उसमें वह मार्दव तथा कोमलता नहीं आई थी जो ब्रज और अवधी में थी। पन्तजी ने उसे उसी रूप

में स्वीकार किया, उस रूप में भी उसे काव्य-भाषा के रूप में कल्याण-कर समझा। उन्होंने लिखा है 'हमारे विचार अपने ही समय के चरखे के कते बुने, अपनी ही इच्छा के रंग में रंगे वस्त्र चाहते हैं, चाहे वे मोटे व खुरदरे ही क्यों न हों।' *

परन्तु खड़ी बोली को खुरदरे खद्दर के रूप में ग्रहण करके कवि पन्त ने उसे अपने कलापूर्ण स्पर्श द्वारा मृदुल रेशम के रूप में परिवर्तित कर दिया है। खड़ी बोली को यह उनकी बहुत बड़ी देन है। उनके हाथों से खड़ी बोली का पूर्ण परिष्कार हुआ। भले ही हम नगेन्द्रजी की इस उक्ति से सहमत न हों कि 'भाषा का इतना बड़ा विधायक हिन्दी में कोई नहीं है, हाँ, कभी कोई नहीं रहा। †' पर यह सत्य है कि पन्तजी भाषा के सूत्रधार हैं। भाषा उनके कलात्मक संकेत पर नाचती है, उन्होंने खड़ी बोली को काव्य-भाषा का रूप देने में बहुत अधिक प्रयास किया है, उसमें सफलता पाई है। आज से बीस वर्ष पूर्व कवि ने खड़ी बोली की जिस और सुवर्णाशा की कामना की थी, उसमें भावी की जिस लोकोज्ज्वल पूर्णिमा की कल्पना की थी, वह साकार दिखाई दे रही है और शब्द-शिल्पी पन्त का उसमें बहुत बड़ा हाथ रहा है।

विद्यार्थी जीवन में अपने विस्तृत शब्द-भंडार के कारण पन्तजी 'मशीनरी ऑफ वर्डस्' कहलाते थे। यही मशीन आगे चलकर केवल मशीन न रहकर सजग कलाकार के रूप में परिवर्तित हो गई। एकही वस्तु के भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्दों पर उन्होंने विचार किया और उनमें अन्तर्निहित आत्मा को पहचाना। इस मनन के परिणामस्वरूप उन्होंने अनुभव किया कि "भिन्न भिन्न पर्यायवाची शब्द प्रायः, संगीत भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते हैं। जैसे

---

* पल्लव—प्रवेश—पृष्ठ १५।

† श्री सुमित्रानंदन पंत—नगेन्द्र।

'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भृकुटि' से कटाक्ष की चंचलता, 'भौंहों' में स्वभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय में अनुभव होता है। ऐसे ही 'हिलोर' में उठाव और 'लहर' में सलिल के वक्षस्थल की कोमल कल्पना, 'तरंग' में लहरों के समूह का एक दूसरे से धकेलना, उठकर गिर पड़ना, 'बढ़ो बढ़ो', कहने का शब्द मिलता है, 'वीचि' में जैसे किरणों में चमकती, हवा के पलने में हौले हौले झूलती हुई हँसमुख लहरियों का; 'उर्मि' से मधुर मुखरित हिलोरों का, हिल्लोल कल्लोल से ऊँची ऊँची बाहें उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरंगों का आभास मिलता है। [‡]' इस प्रकार इस सजग कलाकार ने अपने बृहत् शब्द-भंडार का उपयोग भावानुकूल भाषा के प्रयोग करने में किया है।

पन्तजी ने अधिकतर तत्सम शब्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने संस्कृत की अपरिमित शब्दावलि से पूर्ण लाभ उठाया है। परन्तु साथ ही कहीं कोमलता अथवा अभीष्ट प्रभाव डालने के लिये फारसी तथा अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है, यद्यपि गुंजन में अंग्रेजी शब्द कहीं नहीं आया और फारसी के भी दो चार ही शब्द आये हैं:—

'पालें चढ़ीं उठा लंगर'

या (पृष्ठ १०२)

'अपने मधु में लिपटा पर'

(पृष्ठ २०)

कविता में कोमलता की व्यंजना करने के लिये पन्तजी ने ब्रजभाषा के भी कुछ शब्द ले लिये हैं:—

'आज छाया चहुँदिशि चुपचाप'

(पृष्ठ ४६)

---

‡ पल्लव—प्रवेश—पृष्ठ २३—(प्रथम संस्करण)।

पन्तजी ने बंगला तथा अंग्रेजी भाषा का भी अध्ययन किया है। इनके शब्द-भंडार पर इनका भी प्रभाव पड़ा है। बंगला के शब्दों का प्रयोग इन्होंने क्या, प्रायः सभी आधुनिक कवियों ने मुक्त-हृदय से किया है। अंग्रेजी का भी व्यापक प्रभाव हिन्दी की शब्दावलि पर पड़ा है। कुछ अंग्रेजी शब्द तो ज्यों के त्यों अथवा तद्भव रूप में लिये ही गए हैं। कुछ शब्दों पर किसी अंग्रेजी शब्द का अनुवाद होने के कारण अप्रयुक्त अर्थ लाद दिये गये हैं। मूल अंग्रेजी शब्द को जाने बिना उनका ठीक अर्थ समझना कठिन ही है।

इस शब्द-संग्रह का प्रयोग पन्तजी ने बहुत कौशल से किया है। कवि ने भाषा को हृदय के ताप में गलाकर कोमल, सरस और प्रांजल बना दिया है। खड़ी बोली में उसने प्राणों का संगीत भर दिया है। उसके शब्द कवि के हृदय-मधु से सिक्त होकर सरस बन गये हैं। कवि जहाँ जैसा भाव व्यक्त करना चाहता है; वहाँ विषयानुरूप शब्दों का प्रयोग करता है। कवि की इस शक्ति का प्रदर्शन उसके चित्रांकणों में पूर्ण रूप से होता है। किसी दृश्य की अनुभूति हम नेत्र, कर्ण और नासा तीनों इन्द्रियों से करते हैं। वन और उपवन में वसन्तागम का दृश्य हमें दिखाई भी देता है, उसके गन्ध से हमें तृप्ति मिलती है, साथ ही भ्रमरों की मधुर गुंजार हमारे कानों को सुख देती है। सफल कवि वही है जो अपनी शब्द-योजना से ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर दे जिससे सम्पूर्ण दृश्य हमारे सामने सजीव बनकर उपस्थित हो जाय। 'गुंजन' के कवि ने अपनी शब्द सामर्थ्य द्वारा ऐसे दृश्य-चित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रथम गान को पढ़ने से ही हमें भ्रमरों का उन्मन गुंजन मानों प्रत्यक्ष सुनाई देता है। मधु के वन के चमकीले रंग हमारे मनश्चक्षुओं के सामने आ जाते हैं, वहाँ का अस्थिर सौरभ मानों प्रत्यक्ष होकर हमें मुग्ध करता है।

कवि जो उल्लास का भाव इन पंक्तियों में व्यक्त कर रहा है वह

इनके शब्दों की ध्वनि में स्वतः गुंजरित होता है:—

'फैल गई मधु-ऋतु की ज्वाल,
जल-जल उठती बन की डाल;
कोकिल के कुछ कोमल बोल
लोगी मोल, लोगी मोल ?
अधिक अरुण है आज सकाल—
चहक रहे जग-जग खग-बाल;
चाहे तो सुनलो जी खोल
कुछ भी आज न लँगी मोल !

(पृष्ठ ७६)

'नौका विहार' की पँक्तियों में जो नाद-साम्य मिलता है वह इस शब्दों के जादूगर के कौशल का बहुत सुन्दर उदाहरण है। नीचे लिखी पँक्तियों में नौका के तैरने की ध्वनि स्पष्ट सुनाई देती है:—

'मृदु मंद मंद, मंथर मंथर,
लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर।'

(पृष्ठ १०२)

दृश्य—चित्रण का एक और उदाहरण देना पर्याप्त होगा:—

'शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भू-तल !'

(पृष्ठ १०१)

इन छोटी छोटी दो पँक्तियों में छोटे छोटे आठ शब्दों में कवि ने प्रकृति का कितना सुन्दर तथा भव्य दृश्य प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कवि गत्यात्मक तथा स्थिर दोनों प्रकार के चित्र प्रस्तुत करने में सफल हुआ है।

इस जादूगरी के मूल में कवि के द्वारा चित्रमय विशेषणों का प्रयोग है। कवि ने आकाश की स्वच्छता को एक 'अपलक' विशेषण की शक्ति का उपयोग करके व्यक्त कर दिया है, ज्योत्स्ना के 'शान्त, स्निग्ध और उज्ज्वल' विशेषणों से चाँदनी का पूर्ण उत्फुल्ल चित्र प्रस्तुत किया है।

वर्तमान काल की रचनाओं में लाक्षणिक वैचित्र्य विशेष रूप से पाया जाता है। इस दिशा में पन्तजी ने शब्द-शक्ति का पूर्ण उपयोग किया है। गुंजन में लाक्षणिक प्रयोग प्रचुर परिमाण में मिलते हैं:—

'आँसू की नीरव माला।'
(दुःख के कारण चुपचाप रोती हुई)
(पृष्ठ ३३)

'मेरे मानस के स्पंदन'
(हृदय को आनन्द प्रदान करने वाले)
(पृष्ठ ३५)

'प्रणय हंसिनी'

(हंसिनी का लाक्षणिक अर्थ कवि ने उज्ज्वल, शुभ्र अथवा पवित्र लया है)

कवि ने अपनी भाषा के व्याकरण आदि के सम्बन्ध में, विशेषतः लिंग के सम्बन्ध में कुछ विशेष धारणाएँ बना रखी हैं। वे 'प्रभात' का स्त्रीलिंग के रूप में प्रयोग करते हैं। वे अर्थ के अनुसार स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिंग मानते हैं। वे लिखते हैं 'जो शब्द केवल अकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही स्त्रीलिंग अथवा पुल्लिंग हो गये हैं और जिनमें लिंग का अर्थ से सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता, और कविता में उनका प्रयोग करते समय

कल्पना कुंठित हो जाती है।' * पर इससे गड़बड़ी ही अधिक हुई है।

पन्तजी ने कहीं कहीं, यद्यपि बहुत कम, लम्बे-लम्बे समासों का भी प्रयोग किया है :—

'जरा-जन्म-भय-मरण-शून्य,
यौवनमयि, नित्य-नवीन;
अतुल विश्व-शोभा वारिधि में,
मज्जित जीवन-मीन,'

(पृष्ठ १००)

'गुंज-मधु-गंध-धूलि-हिम-गात।'

(पृष्ठ ५५)

इन पँक्तियों में मानों 'प्रिय-प्रवास' की आत्मा गूँज रही है।

भाषा को सजाने के साधन अलंकार होते हैं, अतः वे भी भाषा तथा शैली से सम्बद्ध हैं इसलिये आगे पन्तजी की अलंकार योजना पर विचार किया जाएगा।

---

* पल्लव—विज्ञापन—पृष्ठ (ग)—(प्रथम संस्करण)।

अलंकार

भाषा की सजावट के साधन अलंकार होते हैं । परन्तु 'अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिये नहीं, वे भाव की अभिव्यक्ति के लिए विशेष द्वार हैं; भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं ।'* कवि पन्त ने भी अलंकारों का प्रयोग अधिकतर भाषा को उचित सजाने के लिए तथा भावों में तीव्रता एवं स्पष्टता लाने के लिए किया है । उन्होंने कहीं भी 'भाषा की जाली केवल अलंकारों के चौखट में फिट करने के लिए नहीं बुनी है ।' †

शब्दालंकारों में पन्तजी ने अनुप्रास तथा श्लेष का सुन्दर उपयोग किया है अनुप्रास जहाँ भी आया है वह सहज रूप में, बिना प्रयास के आया है, उसमें कहीं भी भद्दापन नहीं है :—

---

* पल्लव—प्रवेश—पृष्ठ २६ –(प्रथम संस्करण) ।

† वही ।

'खेल सस्मित-सखियों के साथ
सरल शैशव सी तुम साकार,
लोल, कोमल लहरों में लीन
लहर ही-सी कोमल, लघु-भार,

(पृष्ठ ४२)

भाव को अधिक रुचिकर तथा प्रभावशाली बनाने के लिये पन्तजी ने 'पुनरुक्ति प्रकाश' का अनेक स्थान पर प्रयोग किया है:—

'विहग, विहग,
फिर चहक उठे ये पुंज पुंज,
कल-कूजित कर उरका निकुंज,
चिर सुभग, सुभग !'

(पृष्ठ ३२)

श्लेष का प्रयोग भी अनेक स्थल पर अच्छा किया गया है:—

'स्नेह-सुख में बढ़ सखि ! चिरकाल
दीप की अकलुष-शिखा समान ;'

(पृष्ठ ३६)

शब्दालंकारों में पन्तजी की कविता में सादृश्य-मूलक अलंकारों का अधिक प्रयोग किया गया है। पन्तजी ने भाव-साम्य पर विशेष लक्ष्य रखा है। इसीमें कवि ने अपनी प्रतीक-पद्धति का प्रयोग किया है। उपमान प्रकृति से लिये गये हैं साथ ही अप्रस्तुत-विधान की भी सुन्दर योजना की गई है।

पन्तजी की एक पूर्णोपमा का उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

'मृदूर्मिल-सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण-सरोज समान,

मुग्ध-कवि के उर के छू तार
प्रणय का-सा नव-गान;
तुम्हारे शैशव में, सोभार,
पा रहा होगा यौवन प्राण;
स्वप्न-सा, विस्मय-सा अम्लान,'

(पृष्ठ ४३)

सांगरूपक का एक बहुत सुन्दर उदाहरण नीचे दिया जाता है:—

'सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रान्त, क्लांत, निश्चल !
तापस-बाला गंगा निर्मल, शशि-मुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर
चंचल अंचल-सा नीलांबर।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी-विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहरें।'

(पृष्ठ १०१)

नीचे एक उदाहरण समासोक्ति का दिया जाता है:—

'नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु-करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !'

(पृष्ठ ८७)

अन्योक्ति का प्रयोग वर्तमान कविता में बहुत होता है। 'गुंजन' में पन्तजी ने भी इसका बहुत प्रयोग किया है:—

'सुनता हूँ, इस निस्तल-जल में
रहती मछली मोतीवाली,
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल-माली।'

(पृष्ठ ७१)

अन्त में हम लक्षणा-मूलक दो पश्चिमी अलंकारों का उल्लेख करेंगे, जिनका प्रयोग छायावाद की कविता की विशेषता है और जिन्हें पन्तजी ने भी अपनाया है; वह हैं 'विशेषण-विपर्यय' तथा 'मानवीकरण'।

'विशेषण-विपर्यय' में विशेषण का प्रयोग प्रयोजनवती लक्षणा के आधार पर विशेष्य के रूप में किया जाता है, यथा—

'मूक व्यथा का मुखर भुलाव'

(व्यथा नहीं व्यक्ति ही मूक है, भुलाव मुखर नहीं, भूलनेवाला मुखर है)

'मानवीकरण' में भाषा की मूर्तिमत्ता का उदाहरण मिलता है। इसमें प्रकृति की अमूर्त वस्तुओं का मानव के समान आचरण दिखाया जाता है। कवि ने चाँदनी को कितना सुन्दर 'दुलहिन' का रूप दिया है—

'दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छवि की छुईमुई-सी
मृदु मधुर-लाज से मर-मर।'

(पृष्ठ ८६)

आज प्रगतिवादी पन्त को अलंकारों की उपयोगिता में सन्देह हो गया है। उनका विचार है कि आजकल के 'सक्रांति युग की वाणी के

विचार ही उसके अलंकार हैं।' * वाणी का कार्य विचार वहन करना तो है ही, पर साथ ही उसका अनिवार्य गुण उन्हें सुन्दर रूप से वहन करना है। वाणी रानी का मंगल-सूत्र भी अलंकार ही गिना जाएगा। प्रगतिवादियों के काव्यकला को निरावरण रूप में लाने के हास्यास्पद प्रयास के प्रति महादेवीजी ने लिखा है 'इतिहास के क्रम में हमारी विचार शृंखला की कड़ी बनकर तो यह प्रगतिवाद सदा ही रह सकता है पर काव्य में अपनी प्रतिष्ठा के लिये उसे कला की रूपरेखा में बँधना ही पड़ेगा। छायावाद युग की सूक्ष्म अनुभूतियों की अभिव्यंजना-शैली चाहे उसके लिये उपयुक्त न हो, परन्तु कला के उस सहज, सरल और स्वाभाविक सौन्दर्य के प्रति उसकी सतर्क विरक्ति उचित नहीं जो जीवन के घृणित, कुत्सित रूप के प्रति भी हमारी ममता को जगा सकता है। †'

---

* आधुनिक कवि—श्री सुमित्रानन्दन पन्त—पृष्ठ १०।

† आधुनिक कवि—श्री महादेवी वर्मा—पृष्ठ २१।

गीत और छन्द

आत्माभिव्यंजन वर्तमान कविता की प्रधान प्रवृत्ति है। आत्माभिव्यंजन के लिए गीतियाँ बहुत ही उपयुक्त माध्यम हैं। मनोगत भावधारा अत्यंत क्षिप्रगति से तथा तीव्रता के साथ गीतियों में प्रवाहित होती है। अतः वर्तमान काल में गीति काव्य की सृष्टि बहुत अधिक हुई है।

हिंदी में विद्यापति, कबीर, सूर, तुलसी, मीरा आदि कवियों ने भी गीत लिखे हैं, परन्तु उनके गीत और वर्तमान कवियों के गीतों में मौलिक अंतर है। इन प्राचीन कवियों ने अपने गीतों को भारतवर्ष के प्राचीन संगीत के उपयुक्त रचा है। उनका गठन किसी राग अथवा रागिनी को दृष्टि में रखकर किया गया, साथ ही मात्राओं का भी ध्यान रखा गया है। वे पद गाने की वस्तु हैं। साधारण रूप से पढ़ने में उनमें यदि कहीं यति अथवा गति भंग दिखाई दे, अथवा मात्रा की

गड़बड़ी ज्ञात हो तो उसका कारण यही है कि यदि उन्हें गद्य या पद्य के समान न पढ़ कर संगीत के रूप में गाया जाए तो यह त्रुटि दिखाई न देगी। आज जो गीतियाँ हिंदी में लिखी जाती हैं वह प्राचीन राग रागिनियों को दृष्टि में रखकर नहीं लिखी जातीं। आज के संगीत पर बँगला और अंग्रेजी के संगीत का बहुत प्रभाव पड़ा है। चित्रपट के गानों का मूल यही है। साहित्यिक गीतियाँ भी ऐसे गानों की ध्वनियों को दृष्टि में रखकर चली हैं। प्रसाद अथवा निराला ने ऐसे गान अवश्य लिखे हैं जो प्राचीन रागों में भी बँध सकें, परन्तु पंतजी के गानों के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। पन्तजी की गीतियों में संगीत ने स्थान पाया अवश्य है, परन्तु वह संगीत भी स्वच्छन्द संगीत ही है।

वास्तव में हिंदी की वर्तमान गीतियाँ अंग्रेजी लिरिक कविताओं के पथ पर अधिक चली हैं।

पंतजी ने अपने गीतों की रचना में भी सजगता के साथ प्रयोग किये हैं। गीतों के लिए उन्होंने मात्रिक छंद लिए हैं। परन्तु साथही वे प्रत्येक चरण को समान मात्राओं के रखने के पक्षपाती कम हैं। उसके लिए वे 'स्वच्छन्द छंद' को लेकर चलते हैं, जिसके विषय में वे लिखते हैं—"यह 'स्वच्छन्द छंद' ध्वनि अथवा लय (rhythm) पर चलता है। जिस प्रकार जलौघ पहाड़ से निर्झर-नाद में उतरता, चढ़ाव में मन्द गति, उतार में क्षिप्रवेग धारण करता, आवश्यकतानुसार अपने किनारों को काटता, छाँटता, अपने लिए ऋजु-कुंचित पथ बनाता हुआ आगे बढ़ता है, उसी प्रकार यह छंद भी कल्पना तथा भावना के उत्थान-पतन, आवर्तन-विवर्तन के अनुरूप संकुचित-प्रसारित होता, सरल-तरल, ह्रस्वदीर्घ गति बदलता रहता है।"*

---

* पल्लव—प्रवेश—पृष्ठ ४४ ।

पल्लव में पंतजी ने अपने इस स्वच्छंद-छंद में गीतियाँ लिखने के प्रयोग का जो विस्तृत वर्णन दिया है यहाँ उसको देना ही उपयोगी होगा। "जहाँ भावना का क्रिया-कम्पन तथा उत्थान-पतन अधिक है जहाँ कल्पना उत्तेजित तथा प्रसारित रहती, वहाँ रोला आया है; अन्यत्र सोलह मात्रा का छंद। बीच बीच में छंद की एक-स्वरता तोड़ने, तथा भावाभिव्यक्ति की सुविधा के अनुसार उसके चरण घटा-बढ़ा दिए हैं। यथा—

'विभव की विद्युत् ज्वाल
चमक, छिप जाती है तत्काल।'

ऊपर के चरण में चार मात्राएं घटाकर उसकी गति मंद कर देने से नीचे के चरण का प्रभाव बढ़ जाता है। यदि ऊपर के चरण में चार मात्राएँ जोड़कर उसे 'विभव की चंचल विद्युत-ज्वाल'-- इस प्रकार पढ़ा जाए, तो नीचे के चरण में विभव की क्षणिक छटा का चमक कर छिप जाने का भाव का स्वाभाविक-स्फुरण मन्द पड़ जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी भावनानुसार छंदों में काट-छाँट कर दी गई है।

उच्छ्वास और आँसू में भी छंद इसी प्रकार बदले गए, और आवश्यकतानुसार राग को विश्राम भी दे दिया गया है। यथा—

"शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल कमनीय" के बाद

"बालिका ही थी वह भी"—इस चरण में वाणी को विश्राम मिल जाता, तब नया छंद—

'सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषण।' इत्यादि

प्रारंभ होता है। उसी प्रकार—

'सुमनदल चुन चुन कर निशि-भोर
खोजना है अजान वह छोर'—

इस सोलह मात्रा के छन्द की गति को "नव कलिका थी वह" वाले चरण में विश्राम देकर तब—

'उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया'

यह चौदह मात्रा का छंद रक्खा है; इसकी गति पूर्ववर्ती छंद की गति से मन्द है। जहाँ समगति के भिन्न भिन्न छन्द आए हैं वहाँ विराम देने की आवश्यकता नहीं समझी गई। इसके बाद प्रकृति-वर्णन है, उसमें निर्झरों का गिरना, दृश्यों का बदलना, पर्वतों का सहसा बादलों के बीच ओझल हो जाना आदि अद्भुत रस का मिश्रण है। इसलिए वहाँ पूर्वोक्त शिथिल गतिवाले छन्द के बाद तुरन्त ही—

'पावसऋतु थी पर्वत प्रदेश
पल पल परिवर्तित प्रकृतिवेश'

यह क्षिप्रगामी छन्द मुझे अधिक उपयोगी जान पड़ा। इस छन्द का सारा वेग—"वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल-घर"—यह विस्तृत चरण रोक देता, और—

'सरल शैशव की सुखद-सुधि सी वही
बालिका मेरा मनोरम मित्र थी'

इस सुख दुख-मिश्रित भावना को ग्रहण करने के लिए हृदय को तैयार कर देता है।

'आँसू' में कहीं कहीं एक ही छन्द के चरणों में अधिक काँट-छाँट हुई है। यथा—

'देखता हूँ जब, उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को!
नवोढ़ा बाल - लहर
अचानक उपकूलों के

प्रसूनों के ढिंग रुककर
सरकती है सत्वर ;
अकेली-आकुलता-सी, प्राण !
कहीं तब करती मृदु-आघात,
सिहर उठता कृश-गात
ठहर जाते हैं पग अज्ञात ।'

इन चरणों में शोकाकुलता के कारण स्वर भंग हो जाने का भाव आया है ; लय की गति रुकती जाती है, तुक भी पास पास नहीं आए हैं । इसी प्रकार 'सिहर उठता कृश-गात' इस चरण की गति कुंठित कर देने से अनुवर्ती चरण में पगों के अज्ञात ठहर जाने का भाव अपने आप प्रकट हो जाता है । अन्यत्र भी—

'पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल चलती है दृग-जल-धार'

इन पंक्तियों में प्रथम चरण के बाद जो विराम मिलता, उससे प्राणों में पिघल पड़ने तथा द्वितीय चरण में आँसुओं के उबलने का भाव अधिक स्पष्ट हो जाता है ।*

गुंजन के गानों में भी इन प्रयोगों का स्पष्ट रूप दिखाई देता है । १९१९ से लेकर १९३० तक के गानों के चरण अधिक छोटे बड़े किए गए हैं । प्रकृति और रूप के गानों में यह विशेष रूप से लक्षित होता है । परन्तु १९३१ तथा १९३२ के गानों में कवि का भावावेश शान्त सा हुआ । उसमें चिन्तन की प्रधानता हुई । परिणामस्वरूप उसके गीत भी कुछ मंथर तथा निश्चित गति से चलने लगे । अधिकतर गान तो प्रसाद के 'आँसू' के १४ मात्राओं वाले छंद में लिखे गए । कुछ गान १२ और १६ मात्राओं के चरणों के मेल से लिखे गए हैं ।

---

* पल्लव—प्रवेश —पृष्ठ ४६—५१ ।

टीका-भाग

गुंजन

कवि ने अपने इस कविता-संग्रह का नाम 'गुंजन' रखा है। प्रथम कविता, आमुख के रूप में, गुंजन नाम की ही है। इसमें कवि का कौशल अपनी चरम सीमा को पहुँचा गया है। क्या शब्द योजना एवं विचार और क्या कला तथा अलंकार सभी की दृष्टि से यह अत्यन्त सुन्दर है। ऐसा ज्ञात होता है कि कवि की आत्मा की सम्पूर्ण उत्फुल्लता, उत्साह तथा मनोवेग इन पंक्तियों में गूँज उठा है।

प्रत्येक वन तथा उपवन में नवीन आयु के, नवयुवक भ्रमरों का बेचैन गुंजन छा गया। नव वसंत का आगमन हुआ, आमों के वृक्ष रूपहले तथा सुनहले फूलों से लद गए। उनकी सुगन्धि से मत्त होकर विविध रंग के (नीले, पीले और ताम्र वर्ण के) भौंरे झुंड के झुंड, उस मधु से पूर्ण वन में बेचैनी से गुंजन कर रहे हैं। अर्थात् नवयुग रूपी नव वसंत का आगमन हुआ है, नए नए आकर्षक विचार फैल रहे हैं उनसे मत्त होकर नवीन धारा के कवि प्राणपूरित गानों के स्वरों से देश को गुंजरित कर रहे हैं।

उस वसन्त का प्रभाव और अधिक व्यापक तथा मोहक हो जाता है। आम्र के अतिरिक्त वन के दूसरे वृक्षों की भी प्रत्येक डाली नई कोमल कोपलों से लदकर लाल लाल दिखाई देती हैं। वह लाली ऐसी ज्ञात होती है मानों वसंत के सौंदर्य की ज्वाला फैल गई हो। उस रूप की ज्वाला में जलकर कवि के प्राणों के भ्रमर बेचैन होकर काँपते और गुंजन करते हैं।

जो नव-वसन्त आया था अब उसने अपना पूर्ण विस्तार कर लिया। आरम्भ में जो फूल अविकसित थे, वही अब पूरी तरह खिल गए हैं, जो कलियाँ बन्द थीं वही अब खिलकर अपनी मादक गंध चारों ओर फैला

रही हैं। जो मलय पवन मन्द-मन्द चल रहा है वह उसकी सुगन्ध से भरकर चचल हो रहा है। ऐसे मादक और मोहक समय में कवि के प्राणों के भ्रमर जीवन रूपी मधु को संचय करने के लिए नवयुग के सजीव भावों से भरे हुए गानों की रचना करने के लिये बेचैन होकर गुंजन कर रहे हैं।

इस कविता की तीन बातें विशेष रूप से हृदय को स्पश करती हैं। पहली है इसकी मधुर शब्द-योजना। इसको पढ़ने से ऐसी ध्वनि निकलती है मानों सुन्दर फूलों से लदे उपवन में सचमुच भ्रमर गुंजन कर रहे हों।

दूसरी बात जो बहुत हृदयग्राही है, वह है इसमें वसन्त के क्रमशः विकसित होने वाले चित्र का सुन्दर चित्रण। पहले छन्द में नव-वसन्त का चित्र है, दूसरे छन्द में उसका अधिक विस्तार है और तीसरे में तो वसन्त का पूर्ण विकास चित्रित किया गया है। उसमें वन का कोना कोना वसन्तश्री और सौरभ से परिव्याप्त हुआ दिखाया गया है।

इस कविता की तीसरी विशेषता है उसमें ध्वनित रूपक। नवयुग रूपी वसन्त है, वसन्त जो चिर विकसित है, उसमें नव जाग्रति के भाव रूपी मधु से मत्त होकर कवि रूपी भ्रमर नव-जीवन से पूर्ण गानों की गुंजार कर रहे हैं।

टिप्पणी—इस कविता का 'उन्मन' शब्द बहुत विवाद पूर्ण है। अनेक विद्वान् इसका अर्थ 'अन्यमनस्क' अथवा 'उदास' मानते हैं; और उसके अनुसार इस कविता का अर्थ यह करते हैं कि उत्फुल्लता पूर्ण वातावरण में भी कवि का गुंजन उदासी पूर्ण होता है, क्योंकि वह संसार-सागर के तल में छाए हुए दुख के कणों का अनुभव करता है। (देखिए गुंजन के तृतीय संस्करण का पृष्ठ १८) परन्तु हम इस अर्थ से सहमत नहीं। यद्यपि यह अर्थ भी इस कविता-संग्रह की कुछ कविताओं की

भावना से मेल खाता है, परन्तु वह इस कविता के तथा इस कविता-संग्रह के केन्द्रीय भाव के विरुद्ध है। हमने 'उन्मन' शब्द का अर्थ 'बेचैन' लिया है, जो 'उन्मनता' का अर्थ है भी। तीसरे संस्करण के पृष्ठ २५ पर जो कविता है उसमें भी 'उन्मन' शब्द आया है, वहाँ पर भी उसका अर्थ 'बेचैन' ही है। यह 'बेचैनी' अत्यन्त जिज्ञासा के कारण हुए उद्वेग से हो सकती है।

[१]

इस कविता में कवि संसार से नितान्त अलिप्त न रहने का उद्बोधन करता है। वह कहता है कि संसार की वेदना को अनुभव करने से ही मानव-जीवन पावन बनता है। मन का स्वर्ण से रूपक देते हुए कवि लिखता है कि जिस प्रकार स्वर्ण अग्नि में गलने से अकलुष बनता है, उसी प्रकार संसार के संताप का अनुभव करने से हृदय का मैल जल जाता है। संसार से तादात्म्य स्थापित करने से जीवन पूर्ण बनता है। एकान्त साधना और संसार से विरक्ति एकांगी जीवन बनाती है।

कवि कहता है कि हे मेरे मन तू अपने आपको धीरे धीरे संसार के दुख के ताप में प्रतिक्षण निरन्तर जला, उस अग्नि में अपने आपको सोने के समान गला डाल। जिस प्रकार अग्नि में गलने से स्वर्ण मल रहित, उज्ज्वल और कोमल हो जाता है, उसी प्रकार इस संसार के दुख की अग्नि से तू भी पाप रहित, तेजस्वी और कोमल बन जाएगा।

दूसरे छन्द में कवि पहले छन्द के भाव को और अधिक प्रस्फुटित करता हुआ लिखता है कि जिस प्रकार सोने को ताप से गलाकर उसकी सुन्दर मूर्ति ढाली जा सकती है उसी प्रकार मानव-हृदय जब संसार के दुख के ताप से गल जाएगा तभी उसके द्वारा जीवन की पूर्णतम मूर्ति बन सकेगी, तभी यह जीवन पूर्ण हो सकेगा, अधूरा अथवा एकांगी न रहेगा। यह परिणाम संसार के ताप-संताप से ममत्व स्थापित करने से

ही प्राप्त हो सकेगा। अतः हे मानव ! मन को उस ताप में गलाकर उसे जीवन की पूर्ण मूर्ति के रूप में ढालना होगा।

दार्शनिक लोग आत्मा को गंधहीन कहते हैं, परन्तु कवि का कथन है कि तू गंध-हीन न रहकर गंध-युक्त बनजा। गंध पृथ्वी का गुण है। इससे यह भाव ध्वनित होता है कि तू पृथ्वी के चराचर जगत से अपना निजत्व स्थापित कर। तू संसार की गंध से दूर न रह, वरन् उसमें लिप्त हो जा। मूर्ति बनने के पूर्व सोना जिस प्रकार रूपहीन होता है, वैसा मत रह, वरन् संसार के ताप से गलकर और ढलकर जीवन की पूर्णतम मूर्ति का स्वरूप धारण करले। मन जोकि अरूप है उसमें नाना प्रकार के रूपों की झाँकी बनाले। एकाकीपन की निर्धनता का अनुभव मत कर, संसार के दुख के ताप से गल जा।

निराशावाद और पलायनवृत्ति के युग में यह कविता एक बहुत ही कल्याणकारी भाव को प्रगट करती है। संसार से पृथक् रहकर जो साधना अथवा काव्य-रचना की जाएगी वह एकांगी तथा अधूरी होगी। संसार कर्त्तव्य-क्षेत्र है और इसके संकटों तथा दुःखों से मुँह मोड़ना उचित नहीं है। कविता यदि जीवन की धूपछाँह का चित्र नहीं है तो वह अधूरी और विकलांग ही है। इसलिए कवि अपने मन को विश्व-वेदना में तपाकर और जीवन की ज्वाला में जलाकर उसे अकलुष, उज्ज्वल और कोमल बनाकर गला देना चाहता है, जिससे कि अपने हृदय रूपी तप्त तरल स्वर्ण से वह जीवन की पावन और पूर्णतम मूर्ति की रचना कर सके। वह संसार के साथ ममत्व स्थापित करने का संकल्प करता है।

इस कविता का सांग-रूपक अलंकार प्रेमियों के लिए मुग्धकर है।

[२]

मनन और चिन्तन के पूर्व जिज्ञासा होती है। प्रबल जिज्ञासा ही ज्ञान का मूल है। यह जिज्ञासा बहुत ही सुन्दर और कवित्व पूर्ण रूप

में इस कविता में प्रकट की गई है। वास्तव में, आगे की कविताओं में उसका विकास-सूत्र मूलरूप में आबद्ध है। कवि जिज्ञासा करता है कि संसार में जो हलचल हो रही है, उसका मूल क्या है ? उसका सूत्रधार कौन है ? उसका कारण क्या है ? यही भाव विविध रूपकों द्वारा कवि इस कविता में व्यक्त करता है।

सर्वप्रथम वह प्रश्न करता है कि शान्त सरोवर में एकाएक चंचल लहरें क्यों उठने लगती हैं ? वह कौनसी इच्छा है जिससे लहरा कर वह चंचल हो उठती है। वह कौनसी शक्ति अथवा प्रेरणा है जो मानस के जल को आन्दोलित करती है।

वह पुनः जिज्ञासा करता है कि जो स्वर वीणा के तारों में सोए रहते हैं वह उनको छूते ही क्यों ध्वनित हो उठते हैं ? वह कौनसी प्रेरणा है जो वीणा के तारों में से स्वर उठाती है ?

चित्र को गंभीरतर और सजीवतर बनाने के लिए अब कवि निर्जीव पदार्थों से सजीव की ओर आता है और कहता है कि आशा का अंकुर जो मानव-हृदय में जमता है उसे कौनसा सुख अथवा प्रेरणा मिलती है कि उसमें एक के पश्चात् एक नए-नए पत्ते आने लगते हैं और वह पूर्ण पौदा बनने लगता है। वह कौनसी शक्ति है जो शान्त मानव-हृदय में आशा का संचार कर उसे आन्दोलित कर देती है।

प्रभाव को और भी सघन करते हुए कवि प्रश्न करता है कि मानव-हृदय में, उस मानव-हृदय में जो स्वभाव से ही निष्ठुर है, वेदना क्यों होती है, वह आँसुओं के प्रवाह में द्रवित अथवा तरल क्यों हो जाता है।

अन्त में कवि अपने प्रश्न को स्पष्ट रूप देता है और कहता है कि वह कौनसी मूल-भूत शक्ति है जो संसार के चराचर जीवों का नियंत्रण करती है ?

[३]

मानव-जीवन-प्रवाह की एक नदी से उपमा देता हुआ कवि कहता है कि जिस प्रकार नदी बड़े वेग से सागर-संगम को दौड़ती रहती है, उसी प्रकार मानव भी अपनी विराट् इच्छाओं की पूर्ति के लिए—साधना का चरम लक्ष्य पाने के लिए—प्रयास करता रहता है। उस चरम लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्न में हम भूल जाते हैं कि हमारे जीवन का वर्तमान, उसका एक एक क्षण निरानन्द होता जा रहा है, जीवन का उल्लास समाप्त हो रहा है, हमारे चारों ओर फैली हुई मनोरम वस्तुओं से हमारा ममत्व मिटा जा रहा है। अतः कवि इस परिणाम पर पहुँचता है कि अपनी 'अति-इच्छा'— चरम लक्ष्य—के प्रति निरन्तर लगे रहना ही जीवन नहीं है, वरन् जीवन के प्रत्येक क्षण में आनन्द लेने में, हमारे चारों ओर बिखरी प्रत्येक वस्तु से ममत्व रखने में, उससे स्नेह करने में ही जीवन है।

कवि प्रश्न करता है कि हमारे जीवन में उदासी से भरे हुए वे क्षण क्यों आते हैं, जब हमें अपने चारों ओर की सब सुन्दर वस्तुएँ—वृक्ष, तृण, पृथ्वी, आकाश अस्त-व्यस्त से दिखाई देते हैं ?

जब हमारी हृदय रूपी वीणा से उल्लासपूर्ण मीठे स्वर निकलना बन्द हो जाते हैं, हमारा जीवन आनन्दहीन हो जाता है और हमारी प्रत्येक श्वास में उदासी छाई होती है : ऐसे उदासी से भरे हुए क्षण हमारे जीवन में क्यों आते हैं ?

इस कविता के तीसरे छन्द में और उसके आगे कवि उक्त प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है। वह कहता है कि हमारे भीतर जो अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा है-बढ़ने की अति इच्छा है- उसके कारण हम सब ओर से आँख बन्द कर आगे बढ़ने का ही प्रयत्न करते हैं। हम यह सोचने लगते हैं कि अपने चरम लक्ष्य पर पहुँचने पर ही हमें सुख

मिलेगा। हम यह भूल जाते हैं कि आगे बढ़ने की क्रिया में भी एक सुख है। उस प्रतिदिन और प्रत्येक वस्तु में से प्राप्त हो सकने वाले सुख को भुलाकर हम जीवन का सारा आनन्द खो बैटते हैं। कवि इन पंक्तियों में मानव-जीवन की उपमा नदी से देता है। नदी का लक्ष्य है आगे बढ़कर अपने जल को सागर में डाल देना। परन्तु उसके बहने में, उसकी प्रत्येक लहर के गान और नर्तन में भी एक सुख है। यही दशा मानव-जीवन-सरिता की है। उस प्रतिदिन के सुख को भुला देने ही से उदास क्षण आ जाते हैं, और हम जीवन का रस खो देते हैं।

जड़ समझी जाने वाली नदी भी प्रतिक्षण का अनुभव करती हुई चलती है। उसकी चेतना को नियंत्रण करने वाली उसकी आत्मा का अस्तित्व है, तभी तो उसका जल, लहर, गति और मार्ग निरन्तर विकास-पूर्ण है। उसकी आत्मा उसके प्रत्येक अवयव में और उसके प्रत्येक क्षण में प्रकट होती है। फिर चैतन्य मानव को तो अपने लक्ष्य पर पहुँचने की अति-इच्छा में प्रति दिन की चेतना की अनुभूति का नाश नहीं करना चाहिये। जड़ नदी को भी तो एक लक्ष्य पर पहुँचना है।

जीवन का उद्देश्य केवल यह नहीं हो सकता कि हमारे चारों ओर जो मनोरम वस्तुएँ बिखरी पड़ी हैं उनसे ममत्व हटाकर अपनी सम्पूर्ण शक्ति और चेतना को एक लक्ष्य-सिद्धि में लगा दिया जाय। जीवन-सरिता का एक मात्र और चरम उद्देश्य यही नहीं हो सकता कि अपने लक्ष्य की ओर वेग से दौड़ती रहे और आस-पास जो कुसुमित किनारे हैं उनकी ओर दृष्टि दौड़ा कर उनसे मनोरंजन न करे।

इस विवाद का निष्कर्ष निकालते हुए अंतिम छन्द में कवि लिखता है कि जीवन-नदी का सुख इसमें है कि उसका सागर से संगम हो, अर्थात् हमें हमारे लक्ष्य की प्राप्ति हो, परन्तु साथ ही हमारे प्रतिदिन

के प्रवाह में, प्रयत्न के प्रत्येक क्षण में भी एक सुख है, अतः आनन्द इसी में है कि हमारे अस्तित्व के प्रत्येक क्षण को भी हम निरानन्द न होने दें।

संसार की बढ़ती हुई भौतिकता की वृद्धि और अनुचित एवं असीमित अभिलाषा ने मानव जीवन को निरानन्द बना दिया है। साथ ही शुष्क साधना के प्रचार से भी जीवन का उल्लास नष्ट होता है। इस कविता में कवि ने उनके विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये हैं। लक्ष्य-सिद्धि के प्रयास में हम जीवन का रस न सुखा दें, यही कवि का कथन है।

टिप्पणी—इस कविता की ग्यारहवीं पंक्ति का शब्द 'अति-इच्छा' महत्वपूर्ण है। २२ पृष्ठ की कविता की २१ वीं पंक्ति में भी यह शब्द आया है। इसका अर्थ 'अत्यधिक-महत्त्वाकांक्षा' हमने लिया है। १६ वें पृष्ठ के 'अति-सुख' और 'अति-दुख' में तथा अन्य कविताओं में भी 'समता' अथवा बौद्धधर्म के 'मध्यम-मार्ग' (मध्यमा-प्रतिपदा) का संकेत दिखाई देता है।

[४]

कवि ने जीवन की सार्थकता के विषय में चिन्तन किया है, उसी का परिणाम इस कविता की सरल और आडंबरहीन पंक्तियों में है। कवि का मत है कि मानव-जीवन की पूर्णता और सार्थकता इसी में है कि उसका जीवन सुख और दुख दोनों का समान क्रीड़ा-क्षेत्र रहे, किसी की भी अति न हो। सतत व्याप्त होने वाला दुख मानव जीवन को रस—रहित बना देता है, उसी प्रकार निरन्तर का सुख भी मानव की मानवता का अपहरण कर लेता है, उसे अधूरा बना देता है।

पहले छन्द में ही कवि कविता का केन्द्रीय भाव प्रकट कर देता

है। वह कहता है कि सदा व्याप्त रहने वाला सुख मुझे वांछित नहीं, साथ ही मुझे चिर स्थायी दुख भी अनभीष्ट है, मैं तो यह चाहता हूँ कि सुख और दुख की आँख मिचौनी खेलकर मेरे जीवन का विकास हो, अर्थात् मेरे जीवन में सुख और दुख समान रूप से थोड़े थोड़े समय के लिये अपना प्रभाव दिखलाते रहें।

जब सुख और दुख अल्प समय के लिये बारी बारी से आएँगे तो मानव जीवन पूर्ण बनेगा, एकांगी न रहेगा। सुख और दुख मानव जीवन में उसी प्रकार आना चाहिएँ जैसे चाँदनी रात को बादलों के टुकड़ों के हट जाने की दशा में कभी तो पूर्ण चाँदनी हो जाती है और कभी चन्द्रमा के बादलों की ओट में हो जाने से अँधेरा हो जाता है।

असीम तथा चिरव्यापी दुख और सुख दोनों ही संसार की पीड़ा का कारण होते हैं। संसार का कल्याण इसी में है कि सुख दुख से बँट जाय और दुख सुख से कम हो जाय।

सदा रहनेवाला सुख भी दुखदायी है, उसी प्रकार सदा रहनेवाला दुख भी कष्टकर है। जिस प्रकार दिन और रात के जोड़े में जागकर और सोकर मनुष्य प्रसन्न होता है उसी प्रकार सुख और दुख रूपी प्रकाश तथा अन्धकार दोनों ही वांछनीय हैं।

मानव-जीवन सुख और दुख रूपी ऊषा तथा संध्या का क्रीड़ास्थल है, अर्थात् जीवन की सार्थकता सुख और दुख दोनों के जोड़े में है। इसमें विरह और मिलन दोनों ही होते हैं। विरह के बिना मिलन का कोई मूल्य नहीं और मिलन के बिना चिर-वियोग असह्य होगा। हास और अश्रु—सुख का आनन्द और दुख का रुदन दोनों से ही मानव-जीवन बना है, दो में से एक के अभाव में वह अधूरा है।

[५]

इस मधुर शब्दावली-युक्त कविता में कवि कहता है कि मैंने संसार

के अनेक मानव-प्राणियों के हृदय का अन्वेषण और अध्ययन किया, उनमें मुझे सुख और दुख दोनों ही समान भाव से व्याप्त मिले। यह सुख-दुख का जोड़ा मानव-जीवन में अनिवार्य है। यह भाव कवि ने बहुत ही सुंदर रूपक द्वारा व्यक्त किया है। संसार एक उपवन है, जिसमें फूल, पत्ती, अङ्कुर तथा काँटे सभी कुछ हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने हृदय रूपी फूल रखने की डाली लेकर निकलता है और इस उपवन से सुख रूपी सुन्दर पुष्प तथा दुख रूपी काँटे इकट्ठे करता है।

पहले छन्द में कवि मानव-हृदय रूपी डाली के अन्वेषण का संकल्प प्रकट करता है। वह कहता है कि मैं देखूँगा कि इस विस्तृत संसार के सौन्दर्य रूपी उपवन से, जिसमें कली, अङ्कुर, पुष्प और काँटे सभी हैं, हृदय रूपी डाली में किसने कौन कौन से पुष्प चुने हैं। मैं देखूँगा कि किस हृदय को किस छबि ने आवृत्त कर रखा है। किस हृदय में किस मधु की मधुरता व्याप्त हो गई है। किसे किस रंग से, किस रस से और किस रुचि से प्रेम है। (मैं कवि हूँ, साथ ही दिव्य-दृष्टि सम्पन्न भी हूँ) मुझसे कोई छिपाव क्यों करेगा ?

मैं यह देखूँगा कि किसने कोयल की विरह-तान को अपनाया है, अर्थात् किसका जीवन विरह-वेदना में दुखी है और किसको भौंरे का मिलन-गान गाने का अवसर मिला है, अर्थात् संयोग-सुख से आनन्दित है। किसे उल्लास का प्रफुल्लित पुष्प मिला है और किसे विषाद की मुरझाई हुई कलियाँ मिली हैं।

अंतिम छन्द में कवि अपने अन्वेषण का परिणाम बतलाता है। वह लिखता है कि प्रत्येक मानव के जीवन में उसे कुछ सुख का अंश दिखाई दिया और कुछ दुख का अंश दिखाई दिया। कोई भी व्यक्ति सुख और दुख के इस जोड़े से मुक्त नहीं है।

इस कविता का रूपक भी बहुत सुन्दर तथा कलापूर्ण है।

[६]

गोस्वामी तुलसीदासजी ने संसार की सागर से तुलना देते हुए समुद्र के अमृत और विष के समान संसार को गुण और दोषमय माना है, इस प्रकार इस कविता में संसार को मानव-जीवन से परिपूर्ण समुद्र से उपमा दी है। समुद्र के अमृत और विष की तरह इस मानव-जीवन से प रपूर्ण समुद्र में सुख और दुख का जोड़ा है। यह समझकर हमें जीवन की प्रत्येक लहर से अधिक से अधिक आनन्द लेने की चेष्टा करना चाहिये। साथ ही एक भाव और इस कविता में निहित है। सागर ऊपर से देखने में बहुत प्रफुल्लित ज्ञात होता है, वही यदि भीतर से देखा जाए तो विषाद-पूर्ण दिखाई देगा। संसार में भी मानव-जीवन ऊपर से जितना हर्षपूर्ण दिखाई देता है, भीतर से वह उतना ही विषादपूर्ण है।

उपमान सागर के वर्णन से आरम्भ करते हुए कवि कहता है कि समुद्र की प्रत्येक लहर पर आनन्द की सुनहली किरणें नाचती हुई दिखाई देती हैं, अर्थात् वह ऊपर से उल्लासपूर्ण दिखाई देता है, परन्तु यदि उसके हृदय के भीतर देखा जाए तो वहाँ दुख के उदासी पूर्ण कण घुले दिखाई देते हैं, अर्थात् विषाद दिखाई देता है।

यह संसार मानव-जीवन से पूर्ण समुद्र के समान है। उक्त सागर के समान यह भी सुख और दुख से पूर्ण है। कवि कहता है कि मानव-जीवन से प्रेम होने के कारण मुझे इस जग रूपी मानव-जीवन के समुद्र की लहरों पर फैला हुआ। सुख भी प्रिय है, साथ ही इसके अन्तर में वास करनेवाला दुख भी प्रिय है, मानव-जीवन के विषाद और आह्लाद समान रूप से प्रिय हैं।

सांसारिक जीवन में सुख और दुख व्याप्त हैं, और सत्य तो यह है कि सुख-दुख दोनों मिलकर ही संसार का जीवन पूर्ण बनाते हैं। इसमें

वियोग का दुख और मिलन का सुख दोनों एक सूत्र में बँधे हुए हैं। किसी एक का भी अस्तित्व नहीं मिटाया जा सकता।

अतः इस स्थिति से अधिक से अधिक लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि मानव-जीवन की प्रत्येक लहर से, अपने अस्तित्व के प्रत्येक क्षण से, आनन्द का अनुभव किया जाए, परन्तु साथ ही इस संसार-सागर के अन्तस्थल में गहरा प्रवेश करके वहाँ पर व्याप्त विषाद का भी अनुभव किया जाए। इस अन्तिम छन्द में कवि ने 'नाविक' और 'भाविक' शब्दों का उपयोग बहुत ही सार्थक किया है। जब हम संसार-सागर के नाविक के रूप में जीवन-यात्रा करें तब हमें उचित है कि हम अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु से ममता रखकर, उस जीवन-सागर की प्रत्येक लहर से हँसते खेलते जीवन-यापन करें, परन्तु अपने हृदय की भावनाओं को संसार में व्याप्त विषाद की ओर भी आकृष्ट करते रहें, उससे सहानुभूति रखें। इस प्रकार संसार-यात्रा को हँस खेलकर तो बिताएँ परन्तु साथ ही समवेदना से हीन भी न बनें। हम सुख और दुख दोनों की अनुभूति से पूर्ण हों, यद्यपि प्रवृत्ति हमारी आनन्द की ओर हो।

इस छन्द में बौद्ध धर्म के दुःखवाद की झलक दिखाई देती है। इसमें भी दुख की प्रधानता दिखलाई गई है—सुख तो केवल ऊपर की ही वस्तु है, उसके नीचे—जीवन के अन्तस्तल में—दुख के कण छिपे हुए हैं।

[७]

यह एक चिंतन-प्रधान, दार्शनिक विचारों से पूर्ण कविता है। यह कविता इस संग्रह की उन दो एक कविताओं में से है जिनमें कवित्व न्यूनतम और दार्शनिकता अधिकतम है।

दुखो व्यक्ति की अश्रुपूर्ण आँखों को देखकर सहानुभूति में दुख का होना अवश्यम्भावी है। परन्तु जीवन का कल्याण प्रसन्न रहने से ही हो सकता है। जीवन का श्रेय इसी में है कि हँसते हँसते समय बिताया जाए।

अपने पंख मधु में लिपटाकर भ्रमर सुभीते से गुंजन नहीं कर सकता अर्थात् अपने आनन्द में अत्यधिक लिप्त रहने से ही जीवन के उल्लास को प्राप्त नहीं किया जा सकता, साथ ही अत्यधिक दुःख से करुण व्यक्ति का जीवन भी सजीवता रहित हो जाता है। अपने निज के सुख या दुख दोनों का अत्यधिक चिंतन और उपभोग की प्रवृत्ति मानव-जीवन को अपूर्ण बनाती है और अ-कल्याणकारी है।

मानव-हृदय को सच्चा उल्लास तभी मिल सकेगा जब उसे पूर्ण जीवन का विश्वास मिले—जब अत्यधिक सुख या दुख से पूर्ण अधूरा जीवन न मिलकर उसका मिलन उस जीवन सागर से हो जिसमें सुख और दुख दोनों के किनारे डूब चुके हों—जो अपने निजी सुख और दुःख की संकुचित भावनाओं से भरा न हो।

दुख का भी मानव-जीवन में बहुत बड़ा उपयोग है। दुःख वह भोजन है जिसे खाकर मानव-आत्मा पुष्ट होती है, अथवा यों कहा जाए कि दुःख के सहने से ही मानव आत्मा प्रबल बनती है। हमारी। आत्मा दुःखरूपी अंधकार को खाती है और उसे पुष्ट और दीप्त होकर अपने प्रकाश से—अपनी पावनता से मानव-मन को भर देती है, दुख का अंधकार सह लेने पर ही हमें प्रकाश की प्राप्ति होती है। मानव-हृदय में पूत और उज्ज्वल भावनाओं के लिए दुःख का अस्तित्व भी आवश्यक है।

अन्तिम छन्द इस सम्पूर्ण कविता का निष्कर्ष है। कवि ऊपर के छन्दों में सुख और दुःख के अस्तित्व की उपादेयता को प्रकट कर चुका, साथ ही उनमें अधिक लिप्त न होने की बात भी कह चुका। अब वह

कहता है कि मानव-जीवन में सुख या दुःख कोई प्रधान वस्तु नहीं है— वे तो क्षणिक हैं, नित्य और चिरस्थायी तो जीवन है, अतः जीवन को पूर्ण बनाने का प्रयत्न करना श्रेयस्कर है। जीवन पूर्ण तब बन सकेगा जब वह सुख और दुख से उदासीन तथा अलिप्त हो। ऐसा जीवन ही हमारे हृदय को सहारा दे सकता है, उसे सच्चा उल्लास प्रदान कर सकता है।

इस कविता में कवि ने सुख और दुख दोनों के अस्तित्व की आवश्यकता का प्रतिपादन किया है। साथ ही मनुष्य के हृदय, आत्मा और जीवन के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार व्यक्त किए हैं। दुख आत्मा का पोषक है और आत्मा हृदय को प्रकाश देने वाली है। संसार का सुख-दुख अस्थायी है और जीवन चिरस्थायी है; साथ ही सुख-दुख को समान रूप से अपने भीतर निमग्न करने वाला जीवन ही हृदय को उत्फुल्लता तथा विश्वास प्रदान करता है।

[८]

इस सरल परन्तु सुंदर कविता में कवि यह प्रकट करता है कि सम्पूर्ण प्रकृति यह साक्षी दे रही है कि जीवन सुख और दुख दोनों की क्रीड़ाभूमि है और हमें दुख को भी प्रसन्नतापूर्वक सहना चाहिए। प्रकृति भी हमें यही पाठ पढ़ाती है।

पहले छन्द में कवि कहता है कि पुष्पों का जीवन यद्यपि छोटा होता है, तथापि वे हँसते हँसते जीवित रहते हैं, परन्तु हम मानव-प्राणी इससे कोई पाठ नहीं सीखते और हमारे मुरझाए हुए मलिन अधरों पर एक क्षण भी प्रसन्नता नहीं टिक पाती। हम अपने जीवन को हँसते हँसते बिताना नहीं सीख सके।

जंगल की एक छोटी सी कली सूनी डाली पर ही आनन्द मनाती रहती है, वह अपने एकाकीपन के कारण उदास नहीं होती, परन्तु हम मानव दुख की घड़ियों को हँसते हँसते बिताना नहीं सीख सके हैं।

जिस कुटिल डाली में काँटे होते हैं उसी में पीछे से सुसमय आने पर सुन्दर पल्लव लगते हैं, इसी प्रकार इस जटिल जगत रूपी डाल में दुख के काँटे भले ही हों परन्तु वे इस बात के परिचायक हैं कि कभी अच्छा समय आएगा और इसमें सुख के सुन्दर कोमल पत्ते भी लगेंगे। दुख इस बात का निश्चित चिह्न है कि समयान्तर में सुख भी होगा।

जिस प्रकार वृत्त की कटीली डाल के काँटे उसके मर्म को नहीं भेदते और जिस प्रकार अग्नि का ताप स्वर्ण को भस्म न करके उसे निर्मल ही बनाता है, उसी प्रकार दुख रूपी काँटे अथवा ताप मानव-मर्म के लिए कल्याणकारी होते हैं।

वन में जब आग लगती है तो पहले तो वह सारे जंगल को जला डालती है, परन्तु पीछे से उसमें बहुत ही सुन्दर नवीन वृत्त उत्पन्न होते हैं, इसी प्रकार इस जग-जीवन रूपी वन में दुख की आग पहले तो उसे झुलसा देती है परन्तु पीछे से आशा के, नवीन सृष्टि के नव-अंकुर निकलते हैं। जिस प्रकार ग्रीष्म के भयानक ताप की वेदना से गर्जन करके मेघ शीतल जल की वर्षा करते हैं उसी प्रकार वेदना से व्यथित होकर संसार नवीन जीवन का संचार करता है। दुख प्रारम्भ में कष्टकर भले ही हो परन्तु वह अन्त में कल्याणकर होता है।

इस कविता में पिछली कविता की 'दुख इस मानव-आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन; दुख के तम को खा-खाकर भरती प्रकाश से वह मन।' पँक्तियों के भाव को पल्लवित किया गया है। परन्तु यह कविता पिछली कविता से अधिक कवित्वपूर्ण है।

इस कविता में 'गर्जन' शब्द को स्त्रीलिंग माना है। यह कवि की

रुजि का परिणाम है। करुणार्द्र विश्व की (?) जो गर्जन होगी उसमें परुषता न होगी, संभवतः यही सोचकर उसे कवि ने स्त्री-रूप में देखा है।

[६]

इस कविता में कवि ने 'अति-इच्छा' और 'साधना' दोनों को वर्जित और दुख का मूल समझा है, और सम-इच्छा (बुद्ध के मध्यम-मार्ग के समान) को ही जीवन की पूर्णता माना है।

कवि कहता है कि मेरे हृदय में विचारों का एक द्वन्द्व चल रहा है, जिसकी भ्रमपूर्ण पीड़ा के कारण मेरा हृदय व्यथित हो रहा है। मेरे हृदय में व्याकुलता का वेग उसी प्रकार बढ़ रहा है जिस प्रकार वर्षा-ऋतु में बादलों की घटा छा जाती है। विचार-संघर्ष से मैं अत्यंत व्यथित हूँ।

इस विचार संघर्ष का एक पहलू बतलाते हुए कवि लिखता है कि एक ओर तो जीवन— मद-भरा यौवन सुख-भोग अथवा प्रवृत्ति की ओर खींचता है और प्रिय के मधुर अधरों पर अपने अधर रखते हुए—संयोग-सुख का भोग करते हुए कहता है कि मैं अपनी एक मीठी इच्छा की पूर्ति पर सारे संसार के यौवन-धन को निछावर कर सकता हूँ—मधुर कामना और उसकी पूर्ति ही जीवन का चरम लक्ष्य है।

इस प्रकार की इच्छा और उसकी पूर्ति में सारा शरीर आनन्द से विह्वल हो जाता है और आँखें मद से छक कर मुँदने लगती हैं। परन्तु दूसरी ओर उसी समय एक धक्का सा लगता है और विलास की मस्ती को भंग करते हुए मन में यह विचार उठता है कि नहीं, यह प्रवृत्ति उचित नहीं, आत्म-संयम या साधना ही जीवन का परम लाभ है। यही वह विचार संघर्ष है जिसमें फँस कर मन दुखी होता है। आगे कवि यह बत-

जाता है कि यह विचार-संघर्ष मिथ्या तथा भ्रामक है, वास्तविक सत्य यह है कि अति दोनों ओर बुरी है। सम-इच्छा ही श्रेयस्कर है'

इच्छा जग का जीवन है, अर्थात् बिना इच्छा के संसार नहीं चल सकता; साधना आत्मा का जीवन है, अर्थात् बिना साधना के आत्मा का पतन हो जाता है। केवल जीवित रहने की भावना छलमात्र है, श्वास-प्रश्वास की प्रक्रिया का सतत परिचालन ही जीवन नहीं, (परन्तु) इच्छामय जीवन ही वास्तविक जीवन है, अर्थात् इच्छा रहित हो जाने से जीवित रहने का आनन्द नहीं मिलेगा।

जगत् की इच्छाओं की निरर्थकता बतलाते हुए कवि लिखता है कि संसार की छवियों की छाया हमारे नेत्रों में चक्कर लगाती हैं, अर्थात् हम संसार की सुन्दर वस्तुओं के पीछे पड़ते हैं, परन्तु वे भ्रम-मात्र हैं और उसी प्रकार विलीन हो जाती हैं जैसे बादल घिर घिर कर विलीन हो जाते हैं।

परन्तु इस प्रकार की मिथ्या और भ्रमपूर्ण अनेक इच्छाएँ करना भी जीवन को अधूरा बना लेना है; अर्थात् बहुसंख्यक इच्छाओं से पूर्ण जीवन अधूरा होता है, क्योंकि वे हमारी साधना में बाधा पहुँचाती हैं तथा बन्धन-स्वरूप हैं। परन्तु दूसरी ओर साधना भी एक इच्छा ही है। अतः बहुत अधिक इच्छाएँ न करके सम-इच्छाएँ, संयत-इच्छाएँ रखना ही कल्याणकर तथा सच्ची साधना है। सम-इच्छाएँ रखना ही श्रेष्ठ है।

इस विचार संघर्ष की भ्रमिक वेदना से मेरा हृदय दुखी रहता है। और यह मिथ्या-भ्रमपूर्ण पीड़ा ही इन भ्रामक विचारों की, अर्थात् अति इच्छा और अति साधना की निरर्थकता को सिद्ध कर देती है, तथा सम-इच्छा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है।

टिप्पणी—'ये आधी, अति इच्छाएँ······' उक्त पद का अर्थ कुछ विद्वान् यों करते हैं—आधी इच्छाएँ (जो मन में उत्पन्न होकर विलीन

हो जाती हैं, जिनकी पूर्ति का प्रयत्न ही हम नहीं करते) और अति-इच्छाएँ (जिनकी पूर्ति मानवीय प्रयत्नों द्वारा संभव नहीं)—दोनों ही जीवन-साधना में बाधक हैं। अतः हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि न तो अति-इच्छाएँ उत्पन्न हों और न आधी इच्छाएँ ही। इच्छाएँ संयमित होना चाहिए।

[१०]

इस कविता में कवि ने यह जिज्ञासा की है कि आत्मा का चिर-धन क्या है, और उसके उत्तर देने का प्रयत्न किया है। वह कहता है कि अपने निजी सुख की संकुचित सीमाओं में बद्ध और इच्छाओं से भरा हुआ हमारा जीवन अपूर्ण रहता है; जीवन की पूर्णता सम्पूर्ण विश्व से सहानुभूति स्थापित करने में है।

कवि लिखता है कि मैं यह सोचा करता हूँ कि मेरी आत्मा का चिर धन, जीवन का वास्तविक और शाश्वत तत्त्व क्या है ? यही प्रश्न मुझे बेचैन बनाए रहता है।

संसार की यह सृष्टि सत्य, शिव और सुन्दर है और इस विश्व के चर, अचर सब जीव मुझे प्रिय लगते हैं—तृण, तरु, पशु, पक्षी, मनुष्य तथा देवता मुझे सब प्रिय हैं; परन्तु मेरा मन अपने संकुचित व्यक्तिगत सुखों की तृष्णा के कारण चंचल रहता है। और इसी के कारण मैं सदा बेचैन रहता हूँ।

मैं उच्च आदर्शों को प्रेम करता हूँ। मानव में देवत्व की झलक लाने वाली संस्कृति को और जीवन में आनेवाले सुख तथा दुखों को भी प्रेम करता हूँ, परन्तु मेरी तुच्छ इच्छाएँ मुझे बेचैन रखती हैं और उनके कारण मुझे मानव-जीवन अधूरा सा दिखाई देता है, मैं उसका पूरा रस नहीं ले पाता।

मुझे संसार के जीवन में पूर्ण आनन्द के दर्शन होते हैं, मेरे हृदय में नवीन आशाएँ तथा अभिलाषाएँ हैं और मुझे ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है। यही वस्तुएँ आत्मा का चिर-धन हैं और यही विश्व को नव-जीवन देने वाली हैं। इनके अभाव में, इन्हीं की प्राप्ति के लिये मैं बेचैन और उदास रहता हूँ।

इस कविता में कवि अपने भावों को पूर्णतः और स्पष्टतः व्यक्त नहीं कर सका है। कविता की बारहवीं पंक्ति में 'इच्छा' शब्द से उसका तात्पर्य पिछली किसी कविता में प्रयुक्त 'अति-इच्छा' से है।

[११]

यह कविता हमें पहिली 'गुंजन' शीर्षक कविता का ही एक भाग-सा ज्ञात होती है। वही विचारधारा, वही रूपक, वही मधुर शब्दावलि और वही उल्लास जो पहिली कविता में है इसमें विद्यमान है।

वसंत ऋतु की—नवयुग रूपी वसंत ऋतु की—नवीन कलियाँ खिल रही हैं। हे मेरे मन, तू भी खिल उठ और नव-विचार रूपी पुष्प-गंध और नवभावना रूपी पंखुड़ियों को चारों ओर फैल कर खिल उठा।

जिसके कारण कि नवीन छवियों से, नए रंगों से तथा नवीन वसन्त से जीवन आनन्दमय हो उठे और मानव-जीवन का प्रत्येक श्वास—अस्तित्व का प्रत्येक क्षण भी सालस अर्थात् उद्वेग रहित सुख से प्रसन्न हो जाए।

इस नव-जीवन की मस्ती से भरे हुए मधुवन में नवीन कलियों के नवीन भावों का गुंजन गूँज उठा और नवीन विचार रूपी मधु के संचय के लिए कवि-प्राण गतिमान हो उठे।

ऐसे स्फूर्तिदायक वातावरण में नवीन इच्छाओं रूपी अंकुर में पत्ते बढ़ उठे और कवि-प्राण रूपी भ्रमर नव-जाग्रति के विचार रूपी रस को पीकर तृप्त होने लगे।

टिप्पणी—इस कविता में पुल्लिंग शब्द 'सौरभ' का स्त्रीलिंग के रूप में प्रयोग किया गया है।

[१२]

इस कविता में कवि यह कहता है कि जीवन के प्रत्येक लघुतम क्षणों पर विश्वास करने से, अर्थात् उनकी सार्थकता और उपयोग को मानकर उनमें आनन्द लेने से ही जीवन सुखमय बनता है; इस प्रकार प्रतिक्षण में विश्वास रखने से दुख को भी हँसते हँसते सहा जा सकता है। जीवन के प्रति उदासीनता मधुर ज्ञात भले ही हो, परन्तु उससे मानव-हृदय को जो बन्धन होता है, वह कष्टकर है।

जिस प्रकार स्वाभाविक रूप में आने वाली एक एक श्वास पर ही हृदय की गति अवलम्बित है उसी प्रकार जीवन के छोटे छोटे क्षणों पर विश्वास रखने से उनकी सार्थकता और महत्व का अनुभव करने से जीवन का आनन्द प्राप्त होता है।

हमारा वास्तविक सुख इसी में है कि हम अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को हँसते हँसते बितावें। यह ठीक है कि जीवन का वास्तविक सुख हँसने ही में है परन्तु हँसना वही सार्थक है जो अन्तःप्रेरित हो। जब हृदय उल्लास से शून्य हो तब तो मोती से आँसू के बिंदु ही शोभा-शाली प्रतीत होते हैं। इस प्रकार हम जीवन के प्रत्येक क्षण में आनन्द का अनुभव कर सकते हैं।

हमारे जीवन के यह छोटे छोटे क्षण भी बहुत महत्वपूर्ण हैं। इतना महान् समुद्र भी जल के छोटे छोटे कणों से ही बना है। छोटे छोटे क्षणों से ही जगत् का जीवन बना है। क्षुद्र से क्षुद्र वस्तु की साधना का ही यह परिणाम है कि महानतम वस्तुओं का निर्माण होता है। तात्पर्य यह कि

जीवन के प्रत्येक क्षण को हँस खेल कर बिताने से ही सम्पूर्ण मानव-जीवन सार्थक बनता है।

जीवन को पूर्ण बनाने, उससे आनन्द प्राप्त करने, के नियम बहुत सरल हैं; जिनका संकेत ऊपर किया गया है; अर्थात् जीवन के प्रत्येक छोटे से छोटे क्षण पर विश्वास रखना, उसे हंसते हँसते बिताना, दुख में भी सौन्दर्य देखना; परन्तु इस सरलता को प्राप्त कर लेना उतना आसान नहीं है। जीवन-सागर की प्रत्येक लहर में अनुरक्त हुए बिना यह प्राप्त नहीं हो सकती। इसके विपरीत जीवन संघर्ष, कर्त्तव्य-क्षेत्र अथवा सुख-दुख के इस समन्वय से उदासीनता दिखाकर जो मुक्ति हमें प्राप्त होगी वह क्षणिक होगी, परन्तु उस मुक्ति के फलस्वरूप जो बन्धन होगा वह बहुत पीड़ाकर होगा।

टिप्पणी—इस कविता की अंतिम दो पंक्तियाँ पृष्ठ ११ पर के 'तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन' के समानार्थी हैं। वहाँ पर भी यही भाव व्यक्त किया गया है।

[१३]

दार्शनिक युक्तियों से पूर्ण कविताओं के पश्चात् मानव-जीवन के सौन्दर्य का अभिवादन करने वाली यह सरल तथा मधुर कविता बहुत रुचिकर प्रतीत होती है। उसमें कवि अपने मानव-प्रेम को मुग्धकर प्रवाह में व्यक्त करता है। वह कहता है कि उसे मानव के शरीर, मन, वाणी, कर्म, उसका जन्म-मरण सभी बहुत सुन्दर ज्ञात होते हैं, साथ ही उसे मानव-जीवन के क्रम में पूर्ण सौन्दर्य की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। पिछली कविताओं की 'मुक्ति के बंधन' के विरुद्ध यह कविता है। तत्वदर्शियों को भले ही यह नश्वर मानव-जीवन माया-मय ज्ञात हो परन्तु कवि का मत है कि मानव-जीवन और उसके प्रत्येक अंग

से सहानुभूति रखने में ही जीवन की सार्थकता है, और उसीसे जीवन की पूर्णता प्राप्त की जा सकती है।

कवि कहता है कि इस जगत् के मानव-प्राणियों का जीवन उसे बहुत सुन्दर ज्ञात होता है। मानव का पंचतत्व के धूलि-कणों से बना हुआ शरीर, उसका सुख दुख का क्रीड़ाक्षेत्र मन, उसका बचपन तथा उसका यौवन, उसे सभी बहुत सुन्दर ज्ञात होते हैं।

भावों की अभिव्यञ्जना के लिए बोली जाने वाली मानव-वाणी तथा सांसारिक कार्यों को प्रारम्भ करने का मानव का प्रयत्न सभी में सौन्दर्य ही सौन्दर्य है। मानव के जन्म और मृत्यु में भी एक स्थायी सौन्दर्य है। (क्योंकि वे शाश्वत और कल्याणकारी ध्रुव-सत्य हैं।)

यह चारों ओर फैला हुआ विस्तृत भूमि-खंड, यह छोटे छोटे क्षणों से बना हुआ सदा अग्रसर होकर नवीन बनने वाला समय, इनका प्राचीन और नवीन रूप सभी बहुत सुन्दर है।

यह मानव-जीवन का क्रम बहुत सुन्दर है क्योंकि इसकी प्रवृत्ति सुन्दर से सुन्दरतर और सुन्दरतर से सुन्दरतम बनकर पूर्ण सौन्दर्य प्राप्त करने की है। और इसीलिए इस जगत् का यह जीवन वास्तव में सुन्दर है।

[१४]

इस कविता में पृष्ठ ११ और १२ पर दी हुई कविताओं के भाव का ही विस्तार किया गया है। पिछली कविताओं में जिज्ञासा है और उसका समाधान है। आरम्भ में ही कवि कहता है कि यह सांसारिक जीवन सुखमय, सौन्दर्यमय तथा मधुमय है, इसके प्रत्येक क्षण में आनन्द लेना ही जीवन की सार्थकता है। किसी उच्च लक्ष्य की खोज में दिन-रात प्रयत्न करते रहने में ही जीवन की सार्थकता अथवा पूर्णता निहित नहीं है।

प्रातःकाल ही पत्ती उठकर गाता है कि संसार का जीवन सुन्दर है, सुखमय है। दिन भर जग-जीवन को देखने के पश्चात् संध्या समय पत्ती गाता है कि संसार का जीवन मंगलमय और मधुर है। (आगे के छन्दों में इस सत्य को सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।)

कवि कहता है कि जब मैं आकाश के तारों की ओर देखता हूँ तो ऐसा ज्ञात होता है कि वे अपनी आँखों देखी संसार की कहानी कहते हैं। वे निरंतर अपनी अपलक आँखों से संसार का निरीत्तण करते रहते हैं। उनका अनुभव यह है कि यह संसार वेदना से भरा हुआ है और उस वेदना को देखकर उनकी आँखों में भी समवेदना के आँसू छलछला आते हैं।

परन्तु दूसरी ओर सदा प्रफुल्लित रहने वाले फूल यह पाठ सिखाते हैं कि हम यदि अपने छोटे से जीवन में प्रति त्तण हँस सकें तो अपने हृदय की मृदुल तथा कोमल भाव रूपी सुगंधि से संसार के आँगन को सुरभित कर सकते हैं। अतः संसार में सदा हँसते हँसते जीना ही श्रेयस्कर है। यही भाव पृष्ठ १६ की कविता में है।

पृष्ठ १३ पर दी हुई कविता के भाव को पुनः प्रकट करता हुआ कवि जीवन का समुद्र से रूपक देता हुआ लिखता है कि मानव-जीवन-समुद्र में प्रत्येक व्यक्ति रूपी लहर इसके लिए प्रयत्नशील है कि भले ही उसे लक्ष्य रूपी किनारा न मिले परन्तु वह उसकी प्राप्ति के प्रयत्न में निरन्तर लगा रहे और आगे बढ़ता रहे।

परन्तु अपने जीवन का प्रतिपल आनन्द न लेने वाली वह लहर कभी भी किनारा या लक्ष्य नहीं पाती—उसका (मानव का) जीवन अधूरा रहता है। इसके विपरीत अपने अस्तित्व के प्रतित्तण से आनन्दानुभव करने वाला पानी का बबूला जो आगे बढ़ने के लिए पागल न होकर अपने जीवन के प्रत्येक त्तण का रस-ग्रहण करता है, जीवन के रहस्य का आशय समझ जाता है।

टिप्पणी—इस कविता के पहले छन्द का 'खग' शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है। यहाँ 'खग' से कवि का क्या तात्पर्य है इसके लिए पृष्ठ १०५ देखना होगा। वहाँ कवि 'विहंगम' को दसवीं पँक्ति में 'गीत-खग' कहता है। ऐसा ही मतलब इस कविता में है, यहाँ यह गायक—खग के अर्थ में अर्थात् कवि के अर्थ में है। कवि यह गाता है कि जीवन सुन्दर, सुखमय, मंगल-मय और मधुर है।

साथ ही तीसरे छन्द की चौथी पँक्ति का शब्द 'आँगन' भी बहुत सार्थक है। एक कुटुम्ब के रहनेवाले ही प्रायः एक आँगन में रहते हैं। अतएव इस जग के आँगन में रहनेवाले सब भाई भाई हैं।

[१५]

इस कविता में ६ और २७ पृष्ठ की कविताओं के समान ही भाव हैं। नवयुग का वसंत फैल रहा है। पिछली कविताओं में कवि-प्राण रूपी भ्रमर नवयुग के नवीन भाव रूपी मधु का संचय कर रहा है या मन नव-कलियों के समान खिल रहा है। इस कविता में हृदय रूपी निकुंज के नवीन भाव रूपी पक्षियों का चहकना, जगना, और नवीन गति के गीतों तथा छन्दों में नवीन भावों के फैलाने का उल्लासपूर्ण और प्राणपूरित वर्णन किया गया है।

हृदय रूपी निकुंज को सुन्दर स्वर से पूरित करके ये भाव रूपी पक्षी झुण्ड के झुण्ड मधुर वाणी में बोल उठे?

वह किस सोने की किरण का करुण स्पर्श था जिसने उन्हें सुख से पूरित कर दिया, वे किन नवीन विचारों के स्वप्न थे जिनसे जगाकर ये इतनी प्रफुल्लता से गा रहे हैं। यह कैसा जागृति पूर्ण सबेरा हुआ है? अर्थात् यह नवीन युग के नव विचारों का प्रभाव है कि कवि के भाव इतनी अधिक संख्या में इतनी ताजगी और जीवन लेकर फूट पड़े हैं। यह वातावरण बड़ा मादक और प्राण-पूरित है।

इसमें मेरा सम्पूर्ण हृदय एक कोने से दूसरे कोने तक उल्लास से भर गया और मेरे भाव रूपी विहंगम जाग जागकर मधुर स्वर कर रहे हैं अर्थात् मीठे शब्दों में प्रकट हो रहे हैं। मेरा हृदय नव-जागृति के प्रकाश से भर गया है।

मेरा हृदय गुफा के द्वार के समान बंद था, अर्थात वह नवयुग के प्रकाश से रहित था। नवयुग की अलौकिक किरण ने हृदय के उस जड़ता के अँधेरे को नष्ट कर दिया और जागृति के प्रकाश से उसे पूरित कर दिया।

वह कौनसा सौन्दर्य है जिसने यह मादक तीर छोड़ा है, जिसकी मिटास के कारण मेरा प्राण रूपी कोयल अधीर होकर इतनी तीव्र परन्तु मीठी तान से पुकार उठा है मानों मेरे हृदय को ही चीर डालेगा। जिस प्रकार वसंतागम में कोयल कूक उटता है उसी प्रकार नवयुग के वन्सात के आने से कवि का प्राण रूपी कोयल कूक उटा है।

उद्वेग के कारण मेरी श्वास भी चंचल हो गई है और सुन्दर भावों की भीड़ एकत्रित होगई है—वे बहुत संख्या में उत्पन्न हो रहे हैं और आँखों में से आनन्द के अश्रु गिरने लगे हैं।

मेरे प्रत्येक रोम-कूप में मलय-पवन की शीतलता का अनुभव हो रहा है। मेरा हृदय धड़क रहा है और शरीर पुलकायमान हो रहा है, मेरे जीवन का यह स्वर्ण-सवेरा हुआ है।

इस स्वर्ण-प्रात में नया रूप, नवीन गंध, रंग, मिटास, आनन्द, नई आशा तथा चिर जागृत इच्छाएँ उत्पन्न हुई हैं। मेरे गीतों में नवीन गुंजार है और मेरे गान नवीन छन्दों में प्रकट हो रहे हैं।

मेरे हृदय रूपी निकुंज को अपने मधुर स्वर से गुंजरित करते हुए वह भाव रूपी पक्षी बड़ी संख्या में जाग गए हैं।

इस कविता की शब्द योजना तथा शब्दचित्र बहुत सुन्दर हैं। नव-युग रूपी वसंत का वर्णन बहुत-ही प्राणवान और प्रभावशाली हुआ है।

चाँदनी

चाँदनी शीर्षक दो कविताएँ इस संग्रह में हैं। दूसरी कविता में चाँदनी का हर्षोत्फुल्ल चित्र खींचा गया है, परन्तु यह पहली कविता एक रूपक है—जिसमें चाँदनी दुखी जीवन की प्रतीक मानी गई है—जीवन-बाला के रूप में दिखाई गई है। वह इसलिए तपस्या करके अपनी देह घुलाती-सी दिखाई गई है कि संसार को नव-जीवन का वरदान मिले। इस कविता में चाँदनी का स्वाभाविक रंजक रूप कवि की दृष्टि में नहीं है; परन्तु इसमें निहित भाव, इसका सजीव चित्र और सांग-रूपक इसे दूसरी चाँदनी कविता से बहुत श्रेष्ठ बना देते हैं।

संसार की दुख और दीनता रूपी शैया पर मानव-जीवन रूपी अस्वस्थ स्त्री लेटी हुई है। वह मानव-जीवन रूपी स्त्री की प्रतीक चाँदनी अपनी बीमारी के कारण जाग रही है, उसे चैन की निद्रा नसीब नहीं और वह सतत ओस रूपी आँसू बरसा रही है।

उसकी दुबली देह रूपी लता पीली पड़कर दुर्बल और कोमल होकर कुम्हला गई है, वस्त्र अस्तव्यस्त हो गए हैं और इस कारण से मानों लाज में गड़ गई है और साँसों में समाई हुई है।

उसके अङ्ग, रँग और यौवन मलिन हो गए हैं, उसकी नीची आँखों में आँसू के कण झलकते हैं और वह मौन है। संसार के दुख से उसका (मानव-जीवन रूपो चाँदनी का) हृदय बेधित हो गया है और जीवन का अन्त समीप ही है।

इस दुःखावस्था में भी वह उस समय के लिए आशा लगाए हुए

जीवित है जब संसार के प्रकाशपूर्ण आँगन में नवयुग का सोने का सवेरा होगा; वह विश्व-जीवन रूपी स्त्री यह तप का संताप इस आशा के भरोसे भोग रही है कि उसे नव-जीवन का, नवीन जागृति का वरदान मिलेगा, महा-प्रयाण के पूर्ण वह स्वर्ण प्रभात देख सके।

इस कविता में चाँदनी को स्त्री का रूपक दिया गया है। जगत् के जीवन का तापसी चाँदनी के रूप में बहुत ही सजीव चित्र कवि ने खींचा है और इसके वेदना-पूर्व चित्र में आशावादिता का रंग भी दिया है।

मानव

इस कविता में पिछली सब कविताओं का चरम विकास सा ज्ञात होता है। मानव-जीवन सुख-दुख-मय है, इसलिए प्रिय है। उसके प्रत्येक क्षण से हमें प्रेम होना चाहिए। यह विचार मानव-जीवन के विषय में हुए। इस कविता में कवि मानव की महानता का गान गाता है। इसमें कवि का मानव-प्रेम अपनी चरम सीमा को पहुँचा दिखाई देता है। मानव-जीवन के सर्वव्यापी सौन्दर्य का वर्णन कर अन्त में वह यही अभिलाषा करता है कि उसके गानों में मानव-हृदय में व्याप्त भावनाओं का ही राग हो—वह मानव मन का चितेरा हो।

कवि कहता है कि हे मानव, तुम मेरी भावनाओं के अनुकूल हो, तुम्हीं मेरे गानों के तत्व अथवा विषय या स्वर हो, तुम मेरे हृदय के स्पन्दन के कारण हो, तुम्हारे चिंतन में मेरे हृदय की वृत्तियाँ रमती हैं। ऐसा ज्ञात होता है कि मेरे प्राण तुम्हें अनन्त काल से पहचानते हैं।

तुम्हारे रूप पर मोहित मेरे नेत्रों की तुम पुतली हो, आनन्द की जो मुस्कराहट होती है उसकी मधुर रेखा हो अर्थात् उसके कारण हो। साथ ही करुणा के कोमल आँसुओं के कारण हो।

तुम आनन्दमय हो और ऐसा ज्ञात होता है कि फूलों ने तुमसे मुस्कराना सीखा है। तुम दुख को भी सहन कर लेते हो अतः ऐसा ज्ञात होता है कि तारों से जो ओस गिरती है वह उन्होंने तुमसे ही सीखा है और वह ओस तारों के वेदना पूर्ण आँसू हैं (देखिए चाँदनी में 'आँसू की नीरव माला') अर्थात् हे मानव ! चारों ओर का शोक और उल्लास तुम्हारी ही अनुकृति है।

लहरों ने प्रसन्नचित्त होकर, आपस में मिल जुलकर जीवन व्यतीत करना तुमसे ही सीखा है। मानव उसी प्रकार एक दूसरे से हिलमिल कर हँसते हँसते जीवन बिता देते हैं जैसे लहरें एक दूसरे से मिल कर चलती हैं। हे मानव ! जीवन के माधुर्य को ग्रहण कर तुम प्रेम के मीठे राग गाते हो। भ्रमर ने तुमसे मधु पीकर गाना सीखा है।

हे मानव ! जिस प्रकार आकाश को तारे सुशोभित करते हैं, उसी प्रकार तुम पृथ्वी के तारे हो और जगमगा कर उसे सुशोभित करते हो और संसार रूपी वसंत के वैभव हो— अर्थात् प्रफुल्लता और समृद्धि के प्रतीक हो। तुम प्रकृति सत्य के रूप हो, सुन्दर हो और तुमसे सृष्टि का प्रारम्भ होता है तथा तुम नित्य नवीन हो, तात्पर्य यह कि उस नित्य सत्ता का, अनन्त सौन्दर्य का तुममें आभास मिलता है तथा तुम शाश्वत हो।

हे मानव ! तुम मेरे मन रूपी मधुवन में मानवता के नए सुन्दर रूप में मुस्कराओ और नवीन वायु रूपी सुन्दर भावनाओं की सुगन्धि फैला दो और नए-नए रूपों का आनन्द प्रदर्शित करो। मेरे हर्षोत्फुल्ल हृदय में तुम्हारी जो नवीन मूर्ति व्याप्त है उससे नए प्रकार के मनुष्यत्व का विकास हो।

मैं नवीन जीवन से पूर्ण मानवों के हृदयों में व्याप्त नवयुग के भाव रूपी मधु को पीकर—ग्रहण कर, नवीन भावों से भरे हुए गान लिखूँ;

और उन नवीन विचारों में अपने आपको डुबाकर उस जीवन के मधु में स्वयं डूब जाऊँ अर्थात् नवीन जीवन के माधुर्य में लीन हो जाऊँ।

[१८]

यह कविता अब तक की कविताओं से नितान्त भिन्न प्रकार की है। इसमें जीवन के गहन विषयों से हटकर कवि का ध्यान दूसरी ओर दिखाई देता है। इसमें एक कली के पतन का—दिशान्तर प्रयाण का चित्र श्रुति-मधुर शब्दों में प्रदर्शित किया गया है। किनारे पर एक कली खिली है—अन्य अनेक कलियों की तरह। लहरें आती हैं, टकराकर चली जाती हैं। जहाँ अन्य कलियाँ अपनी स्वतंत्र सत्ता को बनाए रहती हैं, यह अबोध कली भ्रमित हो गई—पथ भ्रष्ट हो गई। परिणाम यह हुआ कि उसे जीवन से हाथ धोना पड़ा, लहरों ने उसे निगल लिया। इससे क्या समझा जाए? क्या यह कविता प्रकृति के एक व्यापार का सुन्दर चित्र मात्र है अथवा इसमें किसी ऐसी कुमारी की जीवन-कथा कही गई है जिसने अनेक प्रलोभनों में पड़ कर अपना जीवन नष्ट कर लिया है? हमें दूसरी बात ही ठीक ज्ञात होती है।

चंचल नदी के किनारे पर एक कली विकसित हुई। वह हृदय की मधुर भावनाओं से पूर्ण थी। अभी उसमें यौवन की हँसी का सबेरा ही था—यौवन आ ही रहा था कि वह अपने वृन्त से कूदकर झड़ गई और पानी में बह गई। संसार रूपी चंचल नदी के किनारे एक कुमारी उत्पन्न हुई, वह सहृदया थी, यौवन आ ही रहा था कि वह पथ-भ्रष्ट होकर संसार के प्रवाह में बह गई।

उस कली के झड़ने और बहने का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि अदम्य वासना रूपी लहर उसका चुम्बन करने, झूठे सुख रूपी फैन के मोतियों से उसका मुँह भरने आई। वह कली क्षण-भंगुर सुखों को स्थायी—सच्चे मोती समझी और उनसे छली जाकर पथ-भ्रष्ट हो गई।

वह कली यह भूल गई कि यह इच्छाएँ तो इस प्रकार आती जाती ही रहती हैं—स्थिर नहीं हैं, वे अवश्य चली जाती हैं। अन्य कलियाँ भी तो इनका शिकार बनती हैं, परन्तु क्षण-स्थायी झोंका खाकर फिर सँभल जाती हैं—पर यह कली अपने को सँभाल न सकी।

इस कली को उचित था कि अपनी टहनी—आधार—को न छोड़ती। नई नई इच्छाएँ आतीं तो उन्हें सहन करती, सुख दुख को सम भाव से देखकर भुगत लेती, परन्तु यह तो उनके साथ घर छोड़ कर बह ही गई।

संसार का यह लेना-देना तो लगा ही रहता है, परन्तु उस कली को यह ध्यान में रखना चाहिए था कि अपनी स्वतंत्र सत्ता एक पृथक् वस्तु है, उसे अपनी आत्मा की स्वतंत्रता सुरक्षित रखना चाहिए थी, लेकिन वह तो अपनी आत्मा का धन—संयम—खोकर भ्रमित हो गई और लहरों द्वारा निगल ली गई।

नौका-विहार

यह पंतजी की अत्यंत प्रसिद्ध तथा सुन्दर कविता है। इसमें दृश्य-चित्रण की शक्ति का चरम विकास दिखाई देता है। चाँदनी रात में गंगा पर नौका-विहार का बहुत मनोहर तथा सजीव चित्र इस कविता में है। इसके विषय में प्रोफेसर नगेन्द्र ने लिखा है 'वास्तव में शब्द और तूली में इतना निकट सम्बन्ध हिंदी का कोई कवि स्थापित नहीं कर सका।' इस कविता में चित्र की महानता तथा कल्पना की मधुरता के साथ-साथ शब्द भी अत्यन्त कोमल हैं। इसमें पंतजी की कला बहुत ऊँची उठ गई है।

पहली दो पंक्तियों में कवि शब्द-चित्र की सुन्दर और महान् पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। चारों ओर शान्ति-दायिनी, मधुर तथा प्रकाश-पूर्ण

चाँदनी फैली हुई है। आकाश स्वच्छ तथा स्थिर (अपलक) है, और पृथ्वी शब्द-हीन-शान्त है।

इस पृष्ठ भूमि में कवि ग्रीष्म ऋतु की गंगा की धारा का तापस-बाला के साथ सांगरूपक प्रस्तुत करता है। 'सैकत शैया' से 'मृदुल लहर' तक यही सांगरूपक है। दूध के समान श्वेत बालू के पर्यंक पर थकी हुई (श्रांत) तथा बेचैन (क्लांत) स्थिर एवं क्षीण अंगवाली तथा ग्रीष्म द्वारा बलहीन की हुई गंगा तापस-बाला के समान लेटी हुई है। (ग्रीष्म-विरल शब्द का अर्थ कुछ विद्वान् 'गर्मी से अलग अलग धाराओं के रूप में' भी लेते हैं। पर यह अर्थ हमारे विचार से इस रूपक में ठीक नहीं बैठता)। लहरों के ऊपर चन्द्रमा का जो प्रतिबिंब पड़ता है वह मानों उस तापस-बाला गंगा का शशि-मुख है, जिसे वह अपनी कोमल (लहर रूपी) हथेली पर रखे हुए है। उसके हृदय पर बाल बिखरे हुए हैं। (गंगा के सेवार आदि जल के पौदों की ओर कवि का संकेत है।) उस गंगा रूपी तापस-बाला के गोरे अंगों पर तारों से जगमगाता हुआ आकाश के प्रतिबिंब रूपी नीला वस्त्र काँपता हुआ लहरा रहा है। चन्द्र-किरणों से चमकती हुई जो गोल गोल तथा सुन्दर लहरें उठती हैं वह मानों इस हिलती हुई नीली साड़ी की सिकुड़ने हैं। (इस पद्य-खंड के विषय में एक बात स्मरणीय है। गुंजन के पहले संस्करण में 'तापस-बाला गंगा निर्मल' के स्थान पर 'तापस-बाला-सी गंगा कल' छपा हुआ था। कवि ने यह संशोधन इसकी आलंकारिता बढ़ाने के लिए किया है। 'सी' शब्द लगा देने से यह शब्द-चित्र 'सांग-रूपक' की परिभाषा में न आता, अतः वह 'सी' हटा दी गई।)

(ऐसी गंगा पर) चाँदनी रात के पहले पहर में (दशमी को—देखिए अगले पद्य में 'दशमी का शशि') हम जल्दी से नाव लेकर चल दिए। (दूसरे पद्य की ये दो पंक्तियाँ 'आगे चले बहुरि रघुराई' के

समान कथा-प्रवाह बढ़ाने के लिए ही हैं।) हँसती हुई सीप (बालू पर, जो सीप के समान दमक रही है) मोती की कांति के समान बिखरती हुई चाँदनी में हमने नाव की पालें चढ़ा दीं और लंगर उठा दिया, और मन्द-मन्द सुहावनी चाल से वह छोटी नाव पाल फैलाकर इस प्रकार तैरने लगी मानों पंख (पाल) फैलाकर हंसनी तैर रही हो। (इन पंक्तियों के शब्दों की मधुरता अपूर्व है तथा उनकी ध्वनि में ऐसा ज्ञात होता है मानों नौका के चलने की ध्वनि ही सुनाई दे रही हो) जल रूपी स्वच्छ दर्पण में चाँदनी के प्रकाश से चमकता हुआ (रजत) किनारा प्रतिबिम्बित होता है और क्षण-भर के लिए यह भ्रम उत्पन्न कर देता है कि उसकी ऊँचाई दुगुनी हो गई है। (यह साधारण अनुभव की बात है कि जब नदी का जल शान्त होता है तो किनारे के घाट आदि का प्रतिबिम्ब जल में भी दिखाई देता है और जैसी रचना ऊपर होती है वैसी ही, परन्तु उलटी, जल के भीतर भी दिखाई देती है। 'निर्भर' शब्द से कवि का यही अभिप्राय ज्ञात होता है जहाँ वास्तविक रचना समाप्त हुई वहीं से उसकी छाया प्रारम्भ हो जाती है) उस गंगा के जल में कालाकाँकर के राजभवन का प्रतिबिम्ब भी पड़ रहा है। ऐसा ज्ञात होता है कि वह भवन हर्ष पूर्ण तथा निश्चिंत होकर, उसमें जो वैभव है उसे अपने भीतर बन्द किए, सो रहा है। (कवि ने बड़े कौशल से समय, तिथि तथा स्थान का परिचय दे दिया है।)

तीसरे पद्य में कवि नौका के आघात से तरंगायत गंगा-जल में चन्द्रमा तथा ताराओं के प्रतिबिम्ब के जो सुन्दर दृश्य दिखाई देते हैं उनका वर्णन करता है। नौका के आघात से जल में लहरें उठतीं हैं, जिसके कारण गंगा में पड़ता हुआ आकाश का सब प्रतिबिम्ब हिल उठता है (इसे कवि ने 'नभ के ओर छोर हिलना' लिखा है) चंचलता से चमकनेवाले ताराओं का समूह ऐसा ज्ञात होता है मानों आँखें फाड़-फाड़कर आकाश-मंडल को प्रकाशित करते हुए यह कुछ ढूँढ रहा

है और उनके उन छोटे दीपकों के प्रकाश को अपने अंचल की ओट से रोकती हुई लहरें मानों छिपती फिर रही हों। ऐसा ज्ञात होता है मानों तारे लहर-सुन्दरियों की ओर घूरघूर कर देख रहे हैं और वे उनकी दृष्टि को बचाकर छुपना चाहती हैं। सामने ही सुन्दर शुक्र तारे का प्रतिबिम्ब जल-परी के समान तैरता सा दिखाई देता है जो कभी-कभी चमकीली लहरों में (रूपहरे कचों में) छिप जाती है। उस रात्रि के दशमी के चन्द्रमा की छाया गंगा में पड़ रही है। लहरें कभी-कभी उसे आँखों के सामने से हटा देती हैं। इसका सादृश्य कवि मुग्धा नायिका के घूँघट की ओट में तिरछे नेत्रों से बार-बार देखने से देता है। लहरों के घूँघट में से झाँक कर शशि रूपी मुग्धा नायिका मानों झुक झुक कर अपना तिरछा मुख दिखा रही हैं।

नौका-विहार के दृश्य को और आगे बढ़ाते हुए कवि लिखता है कि अब हमारी चपल नौका धारा के बीच में पहुँच गई और चाँदनी से चमकता हुआ ऊँचा किनारा छिप गया। (तीसरे पद्य में गंगा की धारा में लहरों के बीच दिखनेवाले चन्द्र तथा तारों से मण्डित आकाश-मंडल की छाया के सौन्दर्य का वर्णन करने के पश्चात् अब कवि ऊपर दृष्टि उठाकर चारों ओर देखता है दूर पर दिखाई देने वाले दोनों किनारे ऐसे ज्ञात होते हैं मानों कि दो भुजाएँ हैं जो धारा के कृश तथा कोमल शरीर का आलिंगन करने को अधीर हैं। बहुत दूर क्षितिज पर जो वृक्षों की श्रेणी दिखाई देती है वह ऐसी ज्ञात होती है मानों नीले आकाश रूपी अपलक नेत्र की टेढ़ी भौंह है। गंगा की धारा के बीच में एक छोटा-सा द्वीप दिखाई देता है जिसे लहरों से पूर्ण जल का प्रवाह टकरा टकरा कर उलट पड़ता है, जल के बीच वह द्वीप ऐसा ज्ञात होता है मानों माता की छाती से चिपका हुआ शिशु सो रहा हो। इसी समय एक पक्षी बोलता हुआ उड़ा, उसे देख कवि कहता है कि क्या

यह वियोगी चकवाक पक्षी है जो अपनी छाया को ही अपनी प्रेयसी समझकर अपनी विरह-व्यथा मिटाने के लिए उड़ पड़ा है ?

नौका लौटा दी गई। उसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि पतवार घुमा दी गई और वह हलके शरीर वाली नौका उलटी धार में चलने लगी। वह नौका अपने डाँड रूपी गतिशील हाथों को फैलाकर तथा उनमें फेन के बुदबुद रूपी मोतियों को भर भर कर जल में ताराओं के हार (जल में पड़ने वाले ताराओं के प्रतिबिम्ब) को बखेरने लगी। (अर्थात् डाँडों के लगने से ताराओं की छाया विलोड़ित होने लगी)। चन्द्रमा की चंचल किरणें पानी पर इस प्रकार चमकती हैं मानों चाँदी के चमकीले साँप द्रुतगति से पानी पर नाँच रहे हों। जल की प्रत्येक लहर में चन्द्रमा और तारों के प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं वह ऐसे ज्ञात होते हैं मानों लहर रूपी बेल में सैकड़ों चन्द्रमाओं और ताराओं के पुष्प खिले हुए हैं। इस प्रकार घूम फिर कर अब नौका नदी के किनारे की ओर उथले पानी में आगई जहाँ बाँस की सहायता से थाह ले-लेकर नाव किनारे की ओर बढ़ी और सब नौका-विहारियों का दल उत्साह के साथ घाट पर पहुँचा।

नौका-विहार का यह अत्यन्त कलापूर्ण वर्णन करने के पश्चात् अन्तिम छन्द में कवि इस यात्रा से जो दार्शनिक भाव उसके हृदय में उठे उनको प्रस्तुत करता है। वह लिखता है कि नाव किनारे की ओर चल दी और उसके साथ कवि के हृदय में ऐसे सैकड़ों विचार आने लगे जिससे अज्ञान का अन्धकार दूर होकर ज्ञान का प्रकाश फैलने लगा।

गंगा की धारा के समान ही संसार का क्रम है। जिस प्रकार गंगा में प्रवाहित होने वाला जीवन (जल) अनादि काल से अपने उद्गम से निकल रहा है, उसी प्रकार इस संसार में भी अनादि-काल से जीवन (प्राणियों की सृष्टि) का क्रम चल रहा है। जिस प्रकार गंगा का जल

सदा प्रवाहित होता रहता है उसी प्रकार जीवों का अस्तित्व भी गतिमान है, वह आगे बढ़ता ही रहता है, जिस प्रकार गंगा के जल का प्रवाह अनन्त सागर में मिलता है उसी प्रकार यह जीवन-प्रवाह भी पूर्णत्व से मिलने के लिए अग्रसर होता रहता है।

आगे कवि अपने दूसरे विचार को व्यक्त करता है। पंतजी के मत के अनुसार प्रकृति नित्य है, आनन्दमय है (सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर— पृष्ठ २६) आकाश में व्याप्त यह नीलिमा का विस्तार नित्य है, चन्द्रमा का यह प्रकाश तथा आह्लाद देने वाली ज्योत्स्ना नित्य हैं और छोटी-छोटी लहरों की यह आनन्दकेलि भी चिरंतन है। यह सम्पूर्ण प्रकृति सुन्दर और अनादि है।

कवि परमात्मा को सम्बोधित करके कहता है कि हे संसार की सृष्टि रूपी नौका को चलाने वाले ! जन्म के भी पूर्व और मृत्यु के भी पश्चात् अर्थात् आवागमन की परंपरा में सतत चलने वाला यह नौका-विहार भी नित्य है।

कवि कहता है कि इन विचारों में मैं इस प्रकार निमग्न हो गया कि मुझे अपने अस्तित्व का ही ध्यान न रहा। जब मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि मानव-जीवन-धारा क्षणिक न होकर चिरव्यापी है तो मुझे मानव-आत्मा की अमरता का बोध हुआ।

इस कविता में रूपक, उपमा आदि सादृश्यमूलक अलंकार से विभूषित मृदुल-भाषा में कवि ने पहले तो अत्यन्त सुन्दर प्रकृति-वर्णन प्रस्तुत किया है और अन्त में उन दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया है जो उन दृश्यों की प्रतिक्रिया के रूप में उसके हृदय पर अंकित हुए।

[४५]

इस कविता के दो भाग हैं। पहले (क) भाग में कवि उन

आक्षेपों का वर्णन करता है जिन्हें आलोचकगण कवि के गीतों के विरुद्ध लगाया करते हैं, दूसरे (ख) भाग में उन आक्षेपों का उत्तर है।

(क)

प्राचीन कविता पद्धति का समर्थक आलोचक मानों कवि से प्रश्न करता है कि हे विहंगम! (गीत-खग अर्थात् गान करने वाले पक्षी अथवा गानों की रचना करने वाले कवि) यह तेरा गान कैसा है? तूने गुरु से पाटशाला में वेद पुराणों का अध्ययन नहीं किया और न तूने षट्-दर्शनों का अध्ययन किया है और न तूने नीति तथा विज्ञान को हृदयंगम किया है। तूने भाषा का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया एवं रीति, रस तथा छन्दों का भी अध्ययन नहीं किया? हे नादान पक्षी (कवि) तू अपनी पिक-प्रतिमा (तोते की तरह प्रकृति-दत्त गान करने की शक्ति) का घमण्ड मत कर और अध्ययन कर!

इस रूपक को आगे बढ़ाते हुए कवि लिखता है कि हे गीत-खग (गान करने वाला पक्षी) विद्वान् लोग तेरी हँसी कर रहे हैं! तेरा निवास उस वन में है जिसमें वास्तविक वृक्ष न होकर केवल छाया के वृक्ष लगे हुए हैं अर्थात् तू सदा कल्पना के लोक में रहता है। तुझे संसार के सुख (हास) अथवा दुःख (अश्रु) का भी अनुभव नहीं है। यह दुख-पूर्ण संसार रूपी आकाश बहुत कठिन है, इसमें इतनी स्वतंत्रता तथा स्वच्छन्दता से नहीं उड़ा जा सकता, यह प्रकाश और छाया से मिला द्वन्द्वात्मक जंगल बहुत गूढ़ है। हे वन्य पक्षी (यहाँ वेद पुराण आदि के अध्ययन करनेवाले, रीति, छन्द रस का पल्ला पकड़कर चलने-वाले प्राचीन रूढ़ियों के पक्षपाती का विरोधी भाव प्रकट करने के लिए 'वन्य' शब्द का प्रयोग किया गया है) तू विजन नीड़ (कल्पना के निराले लोक) में बैठकर यह निरुद्देश्य उड़ान भरकर गान गाना छोड़ दे।

(ख)

इन आक्षेपों का उत्तर देते हुए वह गीत-खग, वह वन्य-पक्षी—नवीन धारा का (छायावादी) कवि उत्तर देता है, कि मैं क्या बताऊँ कि मेरा गान कैसा है ? आज जब सम्पूर्ण वन्य-प्रांत में वसंत का विस्तार हो रहा है, मुग्ध कुसुमों की कलियों से सुगन्धि फूट रही है और जब प्रत्येक तृण आनन्द से पूर्ण है, जब पवन हर्ष से व्याकुल हुआ चल रहा है और जब आकाश में सुनहला सवेरा हुआ है अर्थात् जब जीवन में नवीन उत्फुल्लता, सजीवता तथा; आनन्द ही आनन्द व्याप्त हो गया है तो मेरे हृदय में सहसा गान करने की इच्छा जाग्रत हो जाती है। इस रूपक द्वारा कवि कहता है कि प्रकृति के आनन्द पूर्ण वातावरण में मेरा हृदय डूब जाता है और विना प्रयास के अनायास ही मेरे हृदय में कविता लिखने की प्रेरणा होती है, और कविता लिख जाती है।

इस विचार-धारा को आगे बढ़ाता हुआ कवि लिखता है कि मैं संसार के रम्य रूप में इतना: तल्लीन हो जाता हूँ कि मुझे न तो यह ध्यान रहता है कि मेरा अस्तित्व पृथक् है और न मैं यह अनुभव कर पाता हूँ कि जगत् मुझसे पृथक अस्तित्व रखता है। जगत् के आनन्द-पक्ष में मेरी सत्ता सदा विलीन रहो है। जब मैं आनन्द से भर कर गाने लगता हूँ तो ऐसा ज्ञात होता है कि मेरे गान की अनुभूति से प्रकृति भी हर्षित हो जाती है और वृक्षों का हिलना ऐसा ज्ञात होता है मानों हर्षातिरेक से विश्व पुलकित हो गया है। मैं जब प्रातः या संध्या समय गाता हूँ तो ऐसा ज्ञात होता है मानों मेरे गीत इस अनन्त और अज्ञात विश्व को पार कर जाते हैं, सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाते हैं। मेरा जीवन ही गानमय है और मेरे गान सारे संसार की आत्मा में पूरित हैं, इस प्रकार मुझमें, मेरे गान में और इस विश्व में कोई अंतर नहीं रह जाता। कवि कहता है कि मेरे गान विश्वात्मा की आनन्दमयी वृत्ति का सहज प्रकाशन हैं।

[४४]

इस कविता में कवि अपनी साधना की सफलता का, अपनी कला की आध्यात्मिक विजय का वर्णन करता है। इसमें कवि की आत्मा परमात्मा से यह निवेदन करती सी ज्ञात होती है कि मैंने विश्व की रमणीय प्रकृति का वर्णन किया है, मेरे गीतों का विषय यह अनन्त और चिर सुन्दर प्रकृति रही है, परन्तु वह प्रकृति तुम्हारे स्पर्श से पावन थी, इस प्रकार मेरे गीत तुमसे सम्बद्ध हुए। अतः इन गीतों के सहारे ही मेरे प्राण तुमसे तादात्म्य प्राप्त कर सकेंगे।

कवि लिखता है कि चींटियों की काली पँक्तियों के समान (यह वाग्बन्ध श्लिष्ट है—इसका एक अर्थ तो है बहु-संख्यक, दूसरा कविता की लिखित पँक्तियों के आलेखन का रूप-साम्य भी प्रकट होता है) मेरे गीत दिन-रात प्रसार पा रहे हैं और सब संसार में फैल जाने के लिए निकल पड़े हैं। (कवि ने 'बन्धु' सम्बोधन परमात्मा के लिए प्रयोग किया है। आत्मा और परमात्मा का अभेदत्व इससे प्रकट होता है।)

मेरे यति-गति-हीन (स्वच्छन्द, प्रतिबन्धरहित) गीत चंचल लहरों के समान मेरे अंतस्तल से उठकर, उमड़कर बह चले हैं। वे लहरों के समान चारों ओर फैल रहे हैं और उनके समान ही वे असंख्य और उन्मुक्त हैं।

जिस प्रकार छोटी-छोटी दूब धीरे-धीरे चारों ओर फैल जाती है उसी प्रकार अपने छोटे-छोटे पदों (छन्दों के चरण) से मेरे गान चारों ओर छा गए हैं। (मेरे गीत सम्पूर्ण विश्व में छा गए हैं) जिस प्रकार दूब उत्फुल्ल दिखाई देती है उसी प्रकार मेरे गान भी तुम्हारे चरणों के स्पर्श के आनन्द से प्रफुल्लित हो रहे हैं।

तुम्हारे प्रत्येक स्पर्श के प्रकाश के कारण ही मेरे गीत बिना मुरझाए हुए

इस अपरिचित और अनजान जगत् में तारों के समान कान्तिवान होकर जगमगाते रहते हैं। तुम्हारे पावन स्पर्श से ही मेरे गीतों में दीप्ति आ गई है।

जहाँ जहाँ संसार में सौन्दर्य का वास है वह तुम्हारे चरणों के स्पर्श के कारण है। संसार के मनोहर दृश्य तुम्हारे पद-चिह्न हैं। छवि से पूर्ण पुष्प-संसार में तुम्हारे ही पवित्र पद-चिह्न हैं। उन पुष्पों में जो ओस के बूँद गिरते हैं उन्हीं के समान उन पद-चिह्नों पर आँसू की बूँद के समान मेरे गीत रचे गए हैं। अर्थात् फूलों में मैं तुम्हारी आभा पाता हूँ, उसे देख कर मुझे सुख होता है, उस सुख के आँसू के समान ही सहज रूप में मेरे गीतों का सृजन होता है। मैं कृति के सौन्दर्य के वर्णन में मानों तुम्हारा ही वर्णन करता हूँ।

मेरे इन गीतों के सहारे, उनको स्वरों की लय से पूर्ण होकर, इस लोक से ऊपर उठकर, मेरे प्राण तुमसे तादात्म्य प्राप्त करते हैं, तुमसे पूर्णतः मिल जाते हैं। मेरे प्राणों में तुम परिव्याप्त हो जाते हो और मेरे प्राण तुम्हारा ही रूप बन जाते हैं।

परिशिष्ट

—सहायक पुस्तकें—

(अन्य लेखकों की कृतियाँ जिनसे इस पुस्तक के लिखने में सहायता ली गई हैं तथा जिनके उद्धरण दिये गये हैं।)

१. आधुनिक कवि... ... श्री महादेवी वर्मा।

२. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास ... श्री कृष्णशंकर शुक्ल।

३. कबीर का रहस्यवाद ... डॉ० रामकुमार वर्मा।

४. कलरव ... ... श्री हरिकृष्ण प्रेमी।

५. काव्य में रहस्यवाद ... आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

६. काव्य कला तथा अन्य निबन्ध स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद।

७. छायावाद और रहस्यवाद ... श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय।

८. जायसी ग्रन्थावली ... आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

९. जीवन के गान ... श्री शिवमंगलसिंह 'सुमन'।

१०. नवयुग के गान	...	श्री जन्नाथप्रसाद 'मिलिंद'।
११. प्रबन्ध-पद्म ...	...	श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।
१२. प्रबन्ध-प्रतिमा	...	श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'।
१३. हिन्दी-साहित्य का इतिहास	...	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
१४. श्री सुमित्रानन्दन पन्त	...	प्रो० नगेन्द्र।
१५. यामा ...	...	श्री महादेवी वर्मा।

(कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त की सम्पूर्ण कृतियों की सूची।)

१६. वीणा—रचनाकाल	...	१९१८ से १९१९
१७. ग्रन्थि ,,	...	१९२०
१८. पल्लव ,,	...	१९१८ से १९२५
१९. गुंजन ,,	...	१९१९ से १९३२
२०. युगान्त ,,	...	१९३५ से १९३६
२१. युगवाणी ,,	...	१९३६ से १९३९
२२. ग्राम्या ,,	...	१९३९ से १९४०
२३. आधुनिक कवि (वीणा-ग्राम्या—चयन)		१९१८ से १९४०
२४. ज्योत्स्ना ,,		१९३३
२५. पाँच कहानियाँ ,,		१९३६

● समाप्त ●